

विषयः

पृष्ठाङ्कः

शारीरमलशौचम् ।

१४

द्वादशमलनिर्देशः	१४
तेषां पट्टद्वये मृदासिंख्याविशेषः	१४
परकीयास्थादिसर्शो शुद्धिविशेषः	१४
सुराद्युपहृताश्शुद्धिः	१४
स्वीयपरकीयादिमूत्रादिसर्शो	१४

मृत्संख्या	१५
------------	-----	-----	----

आभेरघः खानां तथोत्सन्नमलाना-	१५
------------------------------	-----	-----	----

मेवाशुचित्यम्	१५
---------------	-----	-----	----

यथोक्तशौचाकरणे प्रायश्चित्तम्	१५
-------------------------------	-----	-----	----

तत्पवादाभासाना निरासः	१५
-----------------------	-----	-----	----

आचमनम् ।

१५

वैधाचमनम्	१५
-----------	-----	-----	----

नैमित्तिकाचमनम्	१५
-----------------	-----	-----	----

सकृदाचमनम्	१५
------------	-----	-----	----

द्विराचमनम्	१५
-------------	-----	-----	----

आचमननिमित्तापवादः	१५
-------------------	-----	-----	----

उच्छिष्टतापवादः	१५
-----------------	-----	-----	----

आचमनविधिः ।

२०

आचमनीयान्नाणि	२०
---------------	-----	-----	----

स्त्रीशूद्रयोः सकृदेवेति नियमनम्	२०
----------------------------------	-----	-----	----

आद्यादितीर्थनामलक्षणानि	२०
-------------------------	-----	-----	----

आचमनसमये हस्तद्वये दर्मावश्यकत्वम्	२१
------------------------------------	-----	-----	----

आचमनसमयेऽवस्थाननियमः	२१
----------------------	-----	-----	----

आचमने निषिद्ध व्रतानि	२१
-----------------------	-----	-----	----

आचामतो निषिद्धचेष्टा	२२
----------------------	-----	-----	----

आचान्तस्यान्यशुचिकराणि	२२
------------------------	-----	-----	----

नैमित्तिकाचमनात्प्राकरणीयगणद्वय-	२२
----------------------------------	-----	-----	----

संख्या	२२
--------	-----	-----	----

आचमनीयजलप्रमाणम्	२३
------------------	-----	-----	----

आचमने करण्य शौकर्मस्थानत्वम्	२३
------------------------------	-----	-----	----

शौकर्मलक्षणम्	२३
---------------	-----	-----	----

विषयः

पृष्ठाङ्कः

अष्टाविंशतिनाम्नामाचमने

विनियोगविभागः ।	२४
-----------------	-----	-----	----

आचमनप्रतिनिधिः	२४
----------------	-----	-----	----

दन्तधावनम् ।	२५
--------------	-----	-----	----

दन्तकाष्ठमक्षणविधिः	२५
---------------------	-----	-----	----

दन्तकाष्ठमक्षणे वर्ज्यदिनानि	२५
------------------------------	-----	-----	----

काष्ठमक्षणनिषिद्धदिने कथं धावनं	२५
---------------------------------	-----	-----	----

कर्तव्यम्	२५
-----------	-----	-----	----

दन्तकाष्ठप्रमाणम्	२५
-------------------	-----	-----	----

दन्तकाष्ठार्थं विहितवृक्षाः	२५
-----------------------------	-----	-----	----

वृक्षविशेषेषु फलविशेषाः	२५
-------------------------	-----	-----	----

दन्तकाष्ठे निषिद्धवृक्षाः	२५
---------------------------	-----	-----	----

अन्यच्च दन्तधावने निषिद्धम्	२५
-----------------------------	-----	-----	----

दन्तधावने दिङ्मुखविशेषतः	२५
--------------------------	-----	-----	----

फलविशेषाः	२५
-----------	-----	-----	----

दन्तधावनमन्त्रः	२५
-----------------	-----	-----	----

दन्तधावने द्रष्टव्या निषिद्धदर्शनाश्च	२५
---------------------------------------	-----	-----	----

पवित्रविधिः ।	२५
---------------	-----	-----	----

कुक्षानां प्रशस्तिः	२५
---------------------	-----	-----	----

सप्तविधं बर्हिः	२५
-----------------	-----	-----	----

दर्भग्रहणविधिः	२५
----------------	-----	-----	----

पवित्रलक्षणम्	२५
---------------	-----	-----	----

पवित्रेषु दर्भसंख्या	२५
----------------------	-----	-----	----

पवित्रके हेतु एव मुख्यत्वम्	२५
-----------------------------	-----	-----	----

सुवर्णादीनां धारणादुक्तिनिर्देशः	२५
----------------------------------	-----	-----	----

जीवस्मिन्नेकेणाधार्याणि	२५
-------------------------	-----	-----	----

दारिद्र्यनाशिनी मुद्रा	२५
------------------------	-----	-----	----

विजयदा मुद्रा	२५
---------------	-----	-----	----

भारणोच्चारणादिषु सिद्धिकरी मुद्रा	२५
-----------------------------------	-----	-----	----

नवरत्नमुद्रा	२५
--------------	-----	-----	----

वशीकरणमुद्रा	२५
--------------	-----	-----	----

अथ ज्ञानम् ।	२५
--------------	-----	-----	----

प्रातःप्राणप्रशस्तिः	२५
----------------------	-----	-----	----

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः																																																																												
ज्ञानस्य गुणदशकनिर्देशः ..	२२	अभ्युत्थच्छायाज्ञानम् । ४२																																																																													
ज्ञानीयपुण्यतोयानि ...	२३	पारिजातोत्तमम् ...	२३																																																																												
ज्ञानसकल्य	२५	आदित्यपुराणोत्तमम् . . .	२३																																																																												
रघुकल्प	२६	समुद्रज्ञानम् ।	२३																																																																												
ज्ञानाज्ञतर्पणकल्प ...	२६	समुद्रज्ञानकाल ..	२३																																																																												
तोयदूषणहारि यक्षमतर्पणम् ...	२७	नैमित्तिकज्ञानम् ।	२३																																																																												
नदीक्षमापणम् ...	२७	अष्टस्थाः ...	२३																																																																												
जाक्षणादिषु विहितकक्षाणि	२७	देवलकलक्षणम् . . .	४३																																																																												
सापवाद कौशेयनिषेध ...	२७	अष्टस्यस्वापवाद . . .	२३																																																																												
परिधानाद्विद्वद्भयनिषेध	२७	ज्ञाने निषिद्धकाल ...	४४																																																																												
आर्द्रवस्त्रमूर्ध्वमेवोत्तारयितव्यम्	२७	सत्रिन्नानं विशेष ..	२३																																																																												
एकवस्त्रनिषेध ...	२७	नैमित्तिकज्ञाने कर्त्तव्यनिषेध	२३																																																																												
धौतनिष्पीडितस्य स्कन्ध निषेध	२७	ज्ञाने शीतोष्णश्रमयोर्विषयविभाग	२३	पनिषेध	२७	मलापकर्षज्ञानम् ।	२३	वस्त्रस्य त्रिगुणनिष्पीडननिषेध	२८	अभ्युत्थे वस्त्रास्तिथय ...	२३	एकवस्त्रलक्षणम् ...	२८	वारविशेषेऽभ्युत्थपञ्चम् ...	२३	उपवीतद्वयस्य वैधव त्रिवर्तुर्णा	२८	गन्धतेलादीना निषेधविषयत्वम्	४५	मपि प्रयोजनम् ...	२८	कातीयानां मन्थाह्नाने कलविशेष	२३	यतिव्रतचारिणा जट्टाशोधनम्...	२८	अथ गौणस्नानम् । ४७		वस्त्रनिष्पीडनविधि ...	२८	ज्ञानप्रतिनिधय	२३	निवीतिना विधेयानि ..	२८	गायत्रादिज्ञानलक्षणानि ...	४८	समन्त्रकामन्त्रकज्ञानस्याधिकारि	२९	गौणस्नानपूतस्य कर्मविशेषेर्द-		विभाग	२९	त्वान्हावम् ...	२३	एकत्रिंशत्कालज्ञानस्याधिकारि	२९	अथ तिलकम् ।	२३	विभाग	२९	तिष्ठकयोग्यमृत्तिका	४९	शुषोष् ज्ञानकल्प ...	२९	तिलवधारणमन्त्रा	२३	शौमकोत्त ...	२९	स्थानविशेषेण पुष्पाकारविशेषा	२३	अथ काम्यज्ञानम्	२९	पुष्पप्रमाणानि . . .	५०	पुलस्त्यानम्	२९	अह्नस्य वेदमागवाश्रयम्	२३	मातृशेनम्	४१	कानविशेष तिष्ठकेषु विशेषा ...	२३	आदित्यपुराणोत्तमम् ...	४१	मृदस्मनोऽर्घ्यतिर्षकपुष्पनिषयनम्	२३	माध्वदेवोत्तमम् ...	४१	अस्मधारणाज्ञाननिर्देश . . .	५१
पनिषेध	२७	मलापकर्षज्ञानम् ।	२३																																																																												
वस्त्रस्य त्रिगुणनिष्पीडननिषेध	२८	अभ्युत्थे वस्त्रास्तिथय ...	२३																																																																												
एकवस्त्रलक्षणम् ...	२८	वारविशेषेऽभ्युत्थपञ्चम् ...	२३																																																																												
उपवीतद्वयस्य वैधव त्रिवर्तुर्णा	२८	गन्धतेलादीना निषेधविषयत्वम्	४५																																																																												
मपि प्रयोजनम् ...	२८	कातीयानां मन्थाह्नाने कलविशेष	२३																																																																												
यतिव्रतचारिणा जट्टाशोधनम्...	२८	अथ गौणस्नानम् । ४७																																																																													
वस्त्रनिष्पीडनविधि ...	२८	ज्ञानप्रतिनिधय	२३																																																																												
निवीतिना विधेयानि ..	२८	गायत्रादिज्ञानलक्षणानि ...	४८																																																																												
समन्त्रकामन्त्रकज्ञानस्याधिकारि	२९	गौणस्नानपूतस्य कर्मविशेषेर्द-																																																																													
विभाग	२९	त्वान्हावम् ...	२३																																																																												
एकत्रिंशत्कालज्ञानस्याधिकारि	२९	अथ तिलकम् ।	२३																																																																												
विभाग	२९	तिष्ठकयोग्यमृत्तिका	४९																																																																												
शुषोष् ज्ञानकल्प ...	२९	तिलवधारणमन्त्रा	२३																																																																												
शौमकोत्त ...	२९	स्थानविशेषेण पुष्पाकारविशेषा	२३																																																																												
अथ काम्यज्ञानम्	२९	पुष्पप्रमाणानि . . .	५०																																																																												
पुलस्त्यानम्	२९	अह्नस्य वेदमागवाश्रयम्	२३																																																																												
मातृशेनम्	४१	कानविशेष तिष्ठकेषु विशेषा ...	२३																																																																												
आदित्यपुराणोत्तमम् ...	४१	मृदस्मनोऽर्घ्यतिर्षकपुष्पनिषयनम्	२३																																																																												
माध्वदेवोत्तमम् ...	४१	अस्मधारणाज्ञाननिर्देश . . .	५१																																																																												

विषयः	शृङ्गाः	विषयः	शृङ्गाः
भस्मधारणकल्पः	५१	सूतकादिषु कर्तव्यः संख्याविधिः	६२
भस्मनः सजलनिर्जलत्वेऽधिकारि- विशेषेण समर्पणम्	५२	जलादीनामस्याभे कार्या विधिः	६३
वर्णविशेषे पुण्ड्रप्रमाणविशेषः ...	५२	गुह्यमन्त्राणामर्घ्यनिर्देशः	६४
भस्मधारणफलम्	५३	फाग्यजपाः ।	६४
अथ संध्यावेन्दनम् ।	५३	होमविधिः ।	६४
संघाया नित्यत्वम्	५३	स्वयमेव होतव्यम्	६४
आदित्यस्यैव गायत्रीत्वादि ...	५३	अशक्ती कैर्याजयति	६४
गायत्र्यादीनां रूपवैकल्यादि ...	५४	तेरिदम्पत्योरन्यतरस्य वा समक्षमेव	६४
गायत्रीनिरुक्तिः	५४	प्रातर्होमकालः	६४
गायत्रीचिन्तनफलम्	५४	सायंहोमकालः	६४
संख्याकालः ।	५४	आप्तु पाक्षिको होमः	६४
गौणमुख्यकालाः	५४	नित्यदानम्	६४
वर्णविशेषेषूक्ताः कालविशेषाः	५४	मत्तलदशनम्	६४
देशविशेषेषु फलविशेषाः	५४	अष्टधाविमत्तस्याहो द्वितीयभाग-	६४
संस्थाप्रयोगः ।	५५	कृत्यम्	६४
आचमनम्	५५	तृतीयभागकृत्यम्	६४
मार्जनम्	५५	पौष्यवर्गः	६४
संख्योपास्तौ जलधारणपात्राणि...	५५	प्रतिग्रहविचारः	६४
मन्त्राचमनम्	५५	चतुर्भागकृत्यम्	६४
तत्र प्रातर्मध्यसायाह्निको विशेषः	५५	पञ्चमहाव्यासाः	६४
मार्जनवस्तुशुद्धयम्	५५	दैवदेवः	६४
पापनिरसनम्	५५	स च साय प्रातः द्विरावृत्त्या	६४
अर्घ्यदानम्	५५	प्रातरेव वा	६४
गायत्रीजपः ।	५५	पञ्चमज्ञानहृत्वा भोक्तुश्चान्द्रायण	६४
तत्रावस्थान कालविशेषेण विभक्तम्	५५	प्रायश्चित्तम्	६४
जपसंख्या	५५	स्वापरादं पञ्चमज्ञानां नित्यत्वम्	६४
उत्तापनानि	५५	वैश्वदेवप्रतिनिधिः	६४
छन्दर्विविन्नयोगादि	५५	वैश्वदेवे कर्ज्याश्रानि	६४
जपस्थोत्तममध्यमाधमत्वम्	५५	प्रवसतुः पञ्चमज्ञानामन्येनारि	६४
क्याच्छादनम्यावश्यकत्वम्	५५	विधेयत्वम्	६४
जपमाला	५५	पञ्चमज्ञानामनुष्ठानक्रमः	६४
उपस्थानम्	५५	तर्पणम्	६४
		तस्य नित्यत्वम्	६४

विषयः	पृष्ठाङ्कः	विषयः	पृष्ठाङ्कः
तर्पणे पात्रद्वारातिलादीना		पञ्चसूत्रलिङ्गम्..	१००
विचार ५४		लिङ्गपरिमाणम्	"
तर्पणे पितृक्रम ७७		गृहेऽर्च्यमूर्तिप्रमाणम्	"
गणिततर्पणम् ७९		शालग्रामशिलापरीक्षा	"
नम्रनिर्णीकनविधि	"	शालग्रामदानफलम् ..	१०२
भीष्मनपणम् ७७		दुष्टशिला	"
यमनपणम्	"	गुग्गुला	"
तर्पणे तिलनिषेध सप्रतिप्रसव	७८	अथ वैद्यदेवः । ..	"
देवपूजा	७९	पञ्चसूत्रानिर्देश	"
पूज्यत्वानिर्देश	"	वैद्यदेवकल्प	१०४
देवताना युगपरतो वैशिष्ट्यम्...	"	भूतयज्ञकल्प	"
पञ्चायतनस्थापनप्रकार ८०		पितृयज्ञ	"
पञ्चदशाना पूजाक्रम ८१		गृहबलि	१०६
पुनराधानयन स्वयमेव पुर्वति	८२	मनुष्ययज्ञ	"
सद्यो निर्मात्यकरणानि	"	कात्यायनीयाना वैद्यदेवानुष्ठान	"
पर्युपितदोषप्रसरणावधि	"	प्रयोग	१०७
सर्वदेवदेयपुण्याणि	"	अथ भोजनम् । १०८	
देवताविशेषतो विहितानि	"	भोजने उत्तनिषिद्धपात्राणि	१०९
निषिद्धानि च पुण्याणि	"	पात्रधारणविधि	"
पूजायननानि	८७	भोजनाङ्गबलिदानम्	"
शालग्रामशिलाया नामलक्ष	"	प्राणाहुतिविधि	११०
गमेश	८८	सुन्यादिषु भोजनपरिमाणम्	"
एकमूर्तिपूजानिषेध	"	भोजनस्य कालद्वयनियमनम्	१११
लौकिकस्य शालग्रामादिषु स्वय	"	मौनविषया	"
पूजानिषेध ..	"	दर्श्या परिवेषणीयानि	११२
विष्णो पूजाकल्प .. ८९-९०		निषिद्धदर्श्यापरिवेषाणि	"
प्रतिमादिषु नित्यस्नाननिषेध	९१	वैद्वेष्ट भोजनं निषिध्यत त	"
भूषणादीना निर्मात्यत्वाभाव ..	"	एकपद्वत्तुपक्वै सहैवारम्भा	"
महादेवपरिचर्याकल्प ९२		रिषमाप्ति कार्येति	"
तीर्थप्रसादमहणनिर्णय ९३		प्रदक्षिणपथ्यादुत्तिष्ठतो दोष	"
भस्मध्वाक्षयोधारिणावश्यकत्वम्	"	भोजने निश्रमविशेषा	११३
पार्थिवपूजा ९४-९८		निषिद्धदुग्धा व	११४
लिङ्गद्रव्यविशेषत फलविशेषा	९९	भोजने निषिद्धा शब्दा	"

यद्दानद्रविणाद्रिनिर्जितवपू रत्नाचलो लज्जया

दूरे स्तब्ध इलायुते निविशते नो यत्र पुंसां गतिः ।

किंच त्रस्यदरातिवामनयनानेत्राभ्युभिर्वर्धित-

स्तेजोऽप्रिर्वहवामुखोत्थहुतमुक्तुल्यः कथं नो भवेत् ॥ १० ॥

आज्ञप्तस्तेन राज्ञा विबुधकुलमणिर्दक्षिणात्यावतंसो

भट्टः श्रीनीलकण्ठः स्मृतिषु दृढमतिर्जैमिनीयेऽद्वितीयः ।

आज्ञामादाय मूर्ध्ना सवितयममुना तस्य सर्वान्निबन्धा-

न्तष्ट्वा सम्यग्विविच्य प्रथिततकिरणस्तन्यते भास्करोऽज्यम् ॥

संस्काराचारकालाः समुचितरचनाः आदृन्तीती विवादो

दानोत्सर्गप्रतिष्ठा जगति जयकराः संगतार्थानुवद्धाः ।

प्रायश्चित्तं विशुद्धिस्तदनु निगादिता शान्तिरेवं क्रमेण

ख्याता ग्रन्थेऽत्र शुद्धे बुबजनमुखदा द्वादशैते मयूराः ॥ १२ ॥

भगवन्तभास्कराख्ये ग्रन्थेऽस्मिन्निष्टसंमते च ततः ।

आचारविधिमूलः प्रतन्यते नीलकण्ठेन ॥ १३ ॥]

श्रुतीः स्मृतीर्बाह्य पुराणजातं तत्तन्निबन्धानपि सन्निबन्धान् ॥

चिरन्तनाचारचयं च वभ्रात्यथाहिकं संप्रति नीलकण्ठः ॥ १४ ॥

प्रतारकैराहतमत्र किंचिन्मया तु निर्मूलतया तदुज्जितम् ।

ऊनोक्ताऽतो नहि तेन किंचित्स्वपुष्पहीनाऽपचितिर्न हीयते ॥ १५ ॥

समूलनिर्मूलमपि व्यवस्थां विनाहतं यद्विषयस्य कैरपि ।

नानौपबैस्तद्वाणिगापणस्यैर्भिषग्वरानुक्तगुणैः समं मतम् ॥ १६ ॥

तत्र परिभाषा ।

कर्मप्रदीपे—यत्रोपदिश्यते कर्म कर्तुरङ्गं न तूच्यते ।

दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणां पारगः करः ॥

यत्र दिङ्नियमो न स्याज्जपहोमादिकर्मसु ।

तिस्त्रस्त्र दिशः प्रोक्ता ऐन्द्री सौम्याऽपराजिता ॥

तिथितत्त्वे गौतमः—

रात्राबुद्धमुखः कुर्यादैवं कार्यं सदैव हि ।

शिवाचर्चनं सदाऽप्येवं शुचिः कुर्यादुद्धमुखः ॥

सदा दिवारात्रौ च । तत्रैव तन्त्रान्तरे—

यत्रैव मानुस्तु वियत्युदेति प्राचीं तु तां वेदविदो वदन्ति ।

ततोऽपरा पूजकपूज्ययोश्च सदागमज्ञा प्रवदन्ति ता तु ॥

अत्र पूज्यपूजकान्त प्राची आगमोक्तपूजायामेव, तत्परिभाषाया-
मुक्तत्वात् । अन्यत्र तु सूयोदयोपलक्षितैव ।

छन्दोगपरिशिष्टे—

आसीन ऊर्ध्वं प्रहो वा नियमो यत्र नेदृशः ।

तदासीनेन कर्तव्यं न प्रह्वेण न विप्रता ॥

उपवीतशिरसाबन्धनयोः पुरुषार्थत्वं ऋत्वर्थत्वं चोक्तं तत्रैव—

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिरसेन च ।

विशिरसो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥

मार्कण्डेयपुराणे—

शिरःस्नातश्च कुर्वीत दैवं पित्र्यमथापि वा ।

धर्मप्रकाशे योगयाज्ञवल्क्य —

आर्पणं छन्दश्च दैनस्य विनियोगस्तथैव च ।

वेदितव्यं प्रयत्नेन प्राक्षणेन विशेषतः ॥

अविदित्वा तु यः कुर्याद्याजनाध्यापनं जपम् ।

होममन्तर्जलादीनि तस्य चाल्पफलं भवेत् ॥

तत्रैवापस्तम्ब —

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रिया ।

प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥

त्रिमात्रस्तु प्रयोक्तव्यं कर्मोद्भेदेऽपि सर्वशः ।

तिस्रः सार्धंश्च कर्तव्याः मात्रास्तस्वार्थचिन्तकैः ॥

युव — ‘न्यायागतेन द्रव्येण कर्माणि कुर्यात्’ इति । ज्ञानस्य ऋत्वर्थत्वं
छान्दोग्योपनिषदि ‘यदेव विद्यया करोति श्रद्धया तदेव धीर्यवत्तरं भवति’
इति उद्गीथोपासनाप्रकरणार्धितेनाप्यनेन यथा ज्ञानस्य सर्वकर्माङ्गं
भवति तथा निरणायि मयाऽव्ययनवादः ।

शाङ्खायनि—

दानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्चनम् ।

प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥

आसनारूढपादो वा जान्वोर्वा जङ्घयोस्तथा ।

कृतावसक्थिको यस्तु प्रौढपादः स उच्यते ॥

विषयः	पृष्ठाङ्कः	विषयः	पृष्ठाङ्कः
पद्मिभोजने निषिद्धाः ... ११४		स्वापविधिः ... ११८	
भोजने दिग्विशेषाभिमुख्ये		रात्रिमूक्तजनः	
फलविशेषाः ... ११५		व्यतीतपूर्वरात्रे रतिमन्दिरगमनम् ..	
भोजनोत्तराङ्गाणि । ..		तत्र स्त्रीकृत्यम्	
भुक्तोच्छिद्योच्छिद्यभागधेयेभ्यो		रतिः	
भुवि निर्वापः, तन्मन्त्रश्च		रतौ वर्ज्यावर्ज्यानि ... ११९	
तर्जन्या वक्ष्यावन्निषेधः ..		रतिशौचम्	
ताम्बूलसेवनम् ... ११६		मुखशायिनो देवाः	
भोजनोत्तरवृत्त्यानि । ..		स्थलविशेषतो शिरःस्थापनेदि- विशेषः	
अष्टधाविभक्तस्याहः पष्ठसप्तमाष्टमा- नां लोकयात्रायां विनियोगः		स्वापे निषिद्धस्थलानि... १२०	
दीपकालः		उक्ताचारे हि मुक्तिदा परितुष्टिः १२१	
संपूर्णरात्रौ दीपस्थापनेन दारि- द्र्यनाशः		स्वप्नफलानि । ..	
दीपस्य दिङ्मुखविशेषस्थापने फ- लविशेषः		सामान्यतः इष्टफलस्वप्नाः	
घ्रातसंख्यावन्दनं तद्विशेषश्च		सामान्यतः अनिष्टफलाः स्वप्नाः ..	
संख्यावन्दनातिक्रमप्रायश्चित्तम्... ११७		विशेषत इष्टफलाः स्वप्नाः ... १२२	
सायंहोमकालः,		विशेषत अनिष्टफलाः स्वप्नाः... १२३	
		स्वस्थारिथानि १२४	
		दुःस्वप्नशान्तिः	

इत्याचारमथूलविषयानुक्रमः ।

॥ श्रीभगवन्तभास्करे ॥ आचारमयूखः ।

द्वितीयः २

मङ्गलाचरणम् ।

पादौ दिवाकरस्याहमवलम्बे मुहुर्मुहुः ।

यत्पादालम्बित पद्म पद्माऽऽरोहति सप्रति ॥ १ ॥

[जज्ञे पितामहस्तनो रज्जु कश्यपो य-

स्तस्मादजायत मानस्तु विमाण्डकारय ।

त पुत्रिणा धुरमरोपयदप्यशृङ्ग-

स्तस्यान्वयेऽप्यजनि शृङ्गिवरामिधान ॥ २ ॥

तस्मिन्वगे महति वितते सगरारये नृपाणा

राजा कर्ण समजनि यथा सागरे शीतरश्मि ।

कीर्त्या यस्य प्रथिततरया श्रोत्रपात्रेऽभिपूष

वर्णन्यापि प्रथिततकथा नावकाश लभन्ते ॥ ३ ॥

निशोकारयदेवस्ततस्तत्सुतोऽभूद्विशोकीकृता येन सर्वा धरित्री ।

ततोऽप्यास राजाऽस्तशनुस्ततोऽभूद्रयाख्यो ग्येणैव सर्वादित ॥ ४ ॥

यभूवाथ वैराटराजस्ततोऽभून्नृपो मेदिनीप्लभो बीडराज ।

नरप्रह्लादेवस्ततो मनुदेवस्ततोऽभून्नृपश्चन्द्रपालामिधान ॥ ५ ॥

शिवगणाख्यनृप समजन्यथो शिवगणाख्यपुत्र प्रचरार य ।

शिवगणेन सम सकलैर्गुणै शिवशिप्रथमो गणनासु य ॥ ६ ॥

रोलिचन्द्र इति तत्तनयोऽभूत्कर्मसेननृपतिस्तमथानु ।

लोकपो नरहरिर्नृपराजो रामचन्द्र इति तत्तनुजात ॥ ७ ॥

यशोदेवस्ततो जातस्ताराचन्द्रनृपस्तन ।

चक्रसेनस्ततो राजा राजसिंहनृपो यत ॥ ८ ॥

ततोऽप्यभूद्रूपतिसाहिदेव स्वकीर्तिभिर्निर्जितदुग्धसिन्धु ।

अभूत्तत श्रीभगवन्तदेव सदैव भाग्योदयवान्निक्षीतीश ॥ ९ ॥

कर्मप्रदीपे—पिच्यमश्वानुद्रवणे आत्मात्मने अवेक्षणे ।
 अधोवायुसमुत्सर्गे प्रहासेऽनृतभाषणे ॥
 मार्जारमूषकस्पर्शे आकृष्टे क्रोधसंभवे ।
 निमित्तेष्वत्र सर्वत्र कर्म कुर्वन्नपः सृशेत् ॥
 तथा च तैलयन्त्रेषु शब्दो यावत्प्रवर्तते ।
 तावत्कर्म न कर्तव्यं शूद्रान्त्वपतितस्य च ॥

मार्कण्डेयः—

संकल्पं च यथा कुर्यात्तनानदानप्रतादिके ।
 अन्यथा पुण्यकर्माणि निष्फलानि भवन्ति च ॥

यथा यथावदित्यर्थः ।

ब्राह्मे—ब्रह्मण्याभाय कर्माणि निःसङ्गः कामवर्जितः ।

प्रसन्नेनैव मनसा कुर्वाणो याति तत्पदम् ॥

‘यत्करोषि’ इति गीताऽपि कर्मणामाश्वर्यप्रतीत्यर्थत्वे प्रमाणम् ।

हारीतः—अनुष्ठितं तु यदेवैर्मुनिभिर्यदनुष्ठितम् ।

नानुष्ठेयं मनुष्यैस्तु तदुक्तं कर्म आचरेत् ॥

बराहपुराणे—

ज्ञानं संध्यातर्पणादि अपहोमामरार्चनम् ।

उपवासवता कार्यं सायंसंध्याहुतीर्विना ॥

चतुर्विंशतिमते—

इक्षूनपः फलं मूलं ताम्बूलं पय औषधम् ।

भक्षयित्वाऽपि कर्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥

॥ इति परिभाषा ॥

अथ प्रबोधः ।

मनुः—

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय धर्मार्थावनुचिन्तयेत् ।

प्रबोधः । कार्यहेताश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ॥

वेदतत्त्वार्थं ईश्वरः ‘ध्यायीत परमेश्वरम्’ इति कूर्मपुराणात् ।

‘न्यायप्रतीतोऽर्थः’ इति श्रीदत्तः । ब्राह्मो मुहूर्तो रात्रेरुपान्त्यो मुहूर्तः ।

तथा च प्रयोगपारिजाते पुराणे रात्रिगतमुहूर्तपञ्चदशकं प्रक्रम्य—

ब्राह्मो नामस्वतश्चैव मुहूर्तं क्रमशो निशि । इति ।

गत्रेस्तु पश्चिमो यामो मुहूर्ता ब्राह्म उच्यते ।

इति पितामहोक्तस्तु वेदाभ्यासार्थः ।

अत्र निद्राया प्रायश्चित्तं स्मृतिरत्नावल्याम्—

ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी ।

ता करोति द्विजो मोहात्पादद्वयेण शुष्यति ॥

शौनके —अस्त गच्छति तिग्माशावव्याधिगत एव यः ।

प्रभाते निश्चितं स्वपेतसं वाग्यसं स्थित्वा समस्तामपि ता निशाम् ॥

अथ प्रायश्चित्तम् । प्रातः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा 'येन सूर्यादि' पञ्चभिः ।

अग्निर्देवमुपस्थाय सवितारं विशुष्यति ॥

सूर्योदयं स्वपेतसोऽपि पूर्वोत्तरं दिनम् ।

वाचयमी भवेत्स्थित्वा चास्तं यात दिवाकरम् ॥

अग्निं गन्तुं "यस्य ते विश्वे" त्यादिभिः पञ्च पूर्वकाः ।

उत्तराभिश्चतसृभिर्नृपतिष्ठेन शुद्धये ॥

अत्र स्मरणीयमाह व्यासः —

महर्षिर्मगवान्व्यासः कृत्वेमा सहिता पुरा ।

श्लोकैश्चतुर्भिर्धर्मात्मा पुत्रमप्यापयन्नुत्तमम् ॥

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।

ससारेऽनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे ॥

हर्षस्थानमहस्त्राणि भयस्थानशतानि च ।

दिवमे दिवमे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥

प्रातः स्मरणम् । ऊर्ध्वग्राहुर्विगैर्म्येष न च कश्चित् शृणोति मे ।

धर्मोऽर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥

न जानु कामान्न भयान्न लोभा-

द्वर्गं त्यजेज्जीवितस्याऽपि हेतोः ।

धर्मो नित्यः सुखदुरोऽपि त्वनित्ये

जीवो नित्यो हेतुस्य त्वनित्यः ॥

इमा भारतसावित्री प्रातस्त्याय यः पठेत् ।

स भारतफलं प्राप्य परं ब्रह्माधिगच्छति ॥

स एव—प्रातः स्मरामि भवर्भातिमहावैशान्त्यं

नारायणं गरुडवाहनमक्षताभम् ।

ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं
 चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम् ॥
 प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना
 पादारविन्दयुगलं परमस्य पुंसः ।
 नारायणस्य नरकार्णवतोरणस्य
 पारायणप्रणवकिप्रपरायणस्य ॥
 प्रातर्भजामि भजतामभयंकरं तं
 प्राक् सर्वजन्मकृतपापभयापहस्यै ।
 यो ग्राह्यकपतिताद्भिगजेन्द्रघोर-
 शोकप्रणाशमकरोद्धृतशङ्खचक्रः ॥
 श्लोकत्रयमिदं पुण्यं प्रातः प्रातः पठेन्नरः ।
 लोकत्रयगुरुस्तस्मै दद्यादात्मपदं हरिः ॥

सद्धर्मचिन्तामणौ—

प्रातः स्मरामि गणनाथमनायकमधुं
 सिन्दूरपूर्णपरिशोभितगण्डयुग्मम् ।
 उदण्डविघ्नपरिखण्डनचण्डदण्ड-
 माखण्डलादिसुरनायकवृन्दबन्धम् ॥
 प्रातर्नमामि चतुराननबन्धमान-
 मिच्छानुकूलप्रसिद्धं च वरं दधानम् ।
 तं तुन्दिलं द्विरसनाधिपयज्ञसूत्रं
 पुत्रं विलासचतुरं शिवयोः शिवाय ॥
 प्रातर्भजाम्यभयदं खलु भक्तशोक-
 दावानलं गणविभुं वरकुलरास्यम् ।
 अशानकाननविनाशनहृष्यवाह-
 मुत्साहवर्धनमहं सुतमीश्वरस्य ॥
 श्लोकत्रयमिदं पुण्यं सदा साम्राज्यदायकम् ।
 प्रातरुत्थाय सततं यः पठेत्प्रयतः पुमान् ॥
 स सर्वव्याधिनिर्मुक्तः परं सुखमवाप्नुयात् ॥
 प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं
 रूपं हि मण्डलमृचो यं जुषां निधानम् ।

सामानि यस्य किरणा प्रभवादिहेतु
 ब्रह्माहारात्मकमलक्ष्यमचिन्त्यरूपम् ॥
 प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ्मनोभि-
 र्ब्रह्मेन्द्रपूर्वकसुरैर्नुतमार्चित च ।
 वृष्टिप्रमोचनविनिग्रहहेतुभूत
 त्रैलोक्यपालनपर त्रिगुणात्मक च ॥
 प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिं
 पापौघशत्रुभयरोगहर पर च ।
 त सर्वलोकत्रलनात्मककालमूर्ति
 गोकण्ठबन्धनविमोचनमादिदेवम् ॥
 श्लोकत्रयमिदं भानो प्रातः प्रातः पठेत्तु य ।
 स सर्वव्याधिनिर्मुक्तः परम सुखमाप्नुयात् ॥
 प्रातः स्मरामि शरदिन्दुक्वरोज्ज्वलाभा
 सद्गन्धर्वसङ्गलकुण्डलहारभूपाम् ।
 दिव्यायुधैर्जितसुनीलसहस्रहस्ता
 रक्तोत्पलाभचरणा भवतीं परेशाम् ॥
 प्रातर्नमामि महिषासुरचण्डमुण्ड-
 शुम्भासुरप्रमुखदैत्यविनाशदक्षाम् ।
 ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिमोहनलोलशीला
 चण्डीं समस्तसुरमूर्तिमनेकरूपाम् ॥
 प्रातर्भजामि भजतामभिलाषदात्रीं
 धात्रीं समस्तजगता दुरितापहन्त्रीम् ।
 ममारयन्धनविमोचनहेतुभूता
 माया परा समधिगम्य परम्य विष्णो ॥
 श्लोकत्रयमिदं देव्याश्रणिङ्काया पठेन्नर ।
 सर्वान्कामानप्राप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥
 प्रातः स्मरामि भवभीतिहर सुरेश
 गङ्गाधर वृषभवाहनमग्निवेशम् ।
 सद्गङ्गाधरवरदाभयहस्तमीश
 ससाररोगहरमौपयमद्वितीयम् ॥

विष्णुः—‘घ्राणास्ये वाससा समावेष्टयित्वा मृद्धानीं ग्रीवायामास-
ज्ज्योच्चरेत्’ इति । मृद्धानीं मृत्तिकाधानार्थं शाटीम् ।

याज्ञवल्क्यः—

दिवा संध्यासु कर्णस्थग्रहसूत्र उदङ्मुखः ।

कूर्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेदक्षिणामुखः ॥

कर्णस्तु दक्षिणः ।

कर्त्रङ्गानामनुक्तौ तु दक्षिणाङ्गं भवेत्तथा ।

इति स्मृत्यर्थसारोक्तेः । अङ्कुराः—

कृत्वा यज्ञोपवीतं तु पृष्ठतः कण्ठलम्बितम् ।

विष्मूत्रं तु गृही कूर्याद्यद्वा कर्णे समाहितः । इति ।

सांख्यायनः—

‘यद्येकवक्षो यज्ञोपवीतं कर्णे कृत्वा मूत्रपुरीषोत्सर्गं कूर्यात्’ इति ।

‘पवित्रं दक्षिणे कर्णे कृत्वा विष्मूत्रमृत्सृजेत्’

इति हारीतोक्तेः पवित्रमपि दक्षिणे कर्णे स्थाप्यम् ।

दर्भस्थानान्यपराकैः—

नीवीमघ्ये तु ये दर्भा ग्रहसूत्रे च ये कृताः ।

पवित्रास्तान्विजानीयाद्ये च कर्णे च दक्षिणे ॥

अत्र विशेषमाह यमः—

प्रत्यङ्मुखस्तु पूर्वाह्नेऽपराह्णे प्राङ्मुखस्तथा ।

उदङ्मुखस्तु मध्याह्ने निशायां दक्षिणामुखः ॥

यत्तु पूर्वोक्तयाज्ञवल्क्यसामान्यं तदनेन बाध्यते, तस्य मध्याह्ने नि-
शायां च सावकाशत्वात् । यत्त माधवः—‘सदैवोदङ्मुखः कूर्यात्’ इति दे-
वल्वाक्यस्य सदाशब्दात् प्राङ्मुखप्रत्यङ्मुखशब्दौ सूर्याभिमुखपराविति
तच्चिन्त्यं सदाशब्दस्यावश्यकत्वबोधकत्वेनाप्युपपत्तेः । यदपि देवणभट्टः
याज्ञवल्क्ययमवाक्यार्थयोर्विकल्पात्माह तदपि चिन्त्यम्, सामान्यविशेष-
शास्त्रयोर्विकल्पायोगात् ।

यत्तु देवलः—

विष्मूत्रमाचरेन्नित्यं संध्यासु परिवर्जयेत् । इति

तन्निरुद्धेतरविष्ममिति माधवः ।

मनुः— छायायामन्वकारे च रात्रावहनि वा द्विजः ।

यथासुरसुरस कुर्यात् प्राणनाधामयेषु च ॥

रात्रौ तु गृहेऽपि कुर्यात् । तदाहापस्तम्ब—‘अस्तमिते वहिर्मा
दाराधावसथाद्वा मूत्रपुरीषयो कर्म वर्जयेत्’ इति । आराहुरात् ।

मदनरत्ने हारीत —

उचारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने ।

श्राद्धे भोजनशाले च पट्सु मौन समाचरेत् ॥

उचार पुरीषोत्सर्ग । प्रस्रावो मूत्रोत्सर्ग ।

आचारप्रदीपे अङ्कित —

सध्ययोरुभयोर्याप्ये भोजने दन्तधावने ।

पितृभार्ये च दैवे च तथा मूत्रपुरीषयो ॥

गुरुणा सनिधौ दाने योगे चैव विशेषतः ।

एषु मौन समातिष्ठन्स्वर्गं प्राप्नोति मानवः ॥

स एव—

आहार तु रहः पुन्यद्विहार चैव सर्वदा ।

शुभाभ्या लभ्यते स्यात्प्ररात्रे ह्रीयते त्रिया ॥

आपस्तम्बश्च—‘नच सोपानत्को मूत्रपुरीषे कुर्यात्’ इति ।

सायणीये—

करस्थोदकपात्रश्च कुर्यान्मूत्रपुरीषे ।

तज्जलं मूत्रसङ्गं मुरापानेन तत्समम् ॥

प्रयोगपारिजाते—

गृहीत्वा जलपात्रं तु विष्णुं कुर्वते यदि ।

तज्जलं मूत्रमदृशं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

मलमूत्रं त्यजेद्विप्रो विष्णुस्योपवीतधृत् ।

उपवातं तदुत्सृज्य गृह्यादन्यन्नं तदा ॥ इति ।

॥ इति मूत्रपुरीषोत्सर्गविधिः ॥

अथ शौचम् ।

भद्राज—

अथापठ्य विष्णुं लोष्ठमाष्ठनृणादिना ।

उदस्तवासा उत्तिष्ठेद्दृढं विभूतमहम् ॥

प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्धदेहं
 सर्गस्थितिप्रलयकारणमादिदेवम् ।
 विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोभिरामं
 संसाररोगहरमौपधमद्वितीयम् ॥
 प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं
 वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम् ।
 नामादिभेदरहितं पद्मभावशून्यं
 संसाररोगहरमौपधमद्वितीयम् ॥

प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य श्लोकत्रयं येऽनुदिनं पठन्ति ।
 ते दुःखजातं बहुजन्मसंचितं हित्वा पदं यान्ति तदेव शंभोः ॥

वामनपुराणे—

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो युधश्च ।
 गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥
 सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च ।
 सप्त स्वराः सप्त रसातलानि कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥
 [सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च सप्तर्षयो द्वीपवनानि सम ।
 भूरादिकृत्वा भुवनानि सप्त कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥
 पृथ्वी भगन्धा सरसास्तथापः स्पर्शा च वायुर्जलनं च तेजः ।
 नमः सशब्दं महसा सहैव कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥
 इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं पठेत्स्मरेद्वा शृणुयाच्च सेवतु ।
 दुःस्वप्ननादास्त्विह सुप्रभातं भवेच्च नित्यं भगवत्प्रसादात् ॥
 पुण्यश्लोको नल्लो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः ।
 पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जेनादेनः ॥
 अश्वत्थामा चलिर्व्यासो हनूमाश्च विभीषणः ।
 कृपः परशुरामश्च समैते चिरजीविनः ॥
 सत्तैतान्संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम् ।
 जीवेद्दुर्षदात् सांप्रमपमृत्युविवर्जितः ॥
 श्वक्लृपः श्रौण्दीः शीतः नारः मन्त्रेन्द्रः नरपः ।
 पञ्चकं ना स्मरेन्नित्यं मानहान्या न वाच्यते ॥

मदनपारिजाते स्कान्दे—

अविमुक्तचरणयुगल दक्षिणामूर्तेश्च कुक्कुटचतुर्कम् ।
स्मरणमपि वाराणस्या निहन्ति दुःस्वप्नमपशुनं च ॥

प्रयोगपारिजाते भूप्रार्थना—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले ।
विष्णुपत्नि नमस्तेऽस्तु पादस्पर्श क्षमस्व न ॥

कात्यायन —

श्रोत्रियं सुभग गा च अग्निमग्निचिन्ति तथा ।
प्रातरुत्थाय य पश्येदापञ्च स प्रमुच्यते ॥
रोचन चन्दन गन्धान् मृदङ्गं दर्पण मणिम् ।
गुहमग्निं रविं पश्येन्नमस्येत्प्रातरेव हि ॥
पापिष्ठ दुर्भग चान्वं नम्रमुत्कृत्तनासिकम् ।
प्रातरुत्थाय य पश्येत्तत्कलेरुपलक्षणम् ॥

नम्र बालकव्यतिरिक्तमिति नृसिंह ।

॥ इति प्रबोधविधिः ॥

अथ मूत्रपुरीषोत्सर्गविधिः ।

अङ्गिरा —

उत्थाय पश्चिमे रात्रेस्तत आचम्य चोदकम् ।
अन्तर्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा ॥
कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु शुचौ देशे समाहित ॥ इति ।

तृणे विशेषमाह यम —

अयक्षियैरनाद्रैश्च तृणैः संछाद्य भेदिनीम् । इति ।

पराशर — ततः प्रातः समुत्थाय कुर्याद्विष्णुत्रमेव च ।

नैर्ऋत्यामिषुविशेषमनीत्याभ्यधिकं भुवः ॥

तिरस्कृत्योषरेत्काष्ठं पत्र लोष्ठं तृणानि वा ।

नियम्य प्रयतो वाच मर्शिताङ्गोऽवगुण्ठितः ॥ इति ।

तिरस्कृत्यान्तर्धाय । सर्वाताङ्ग आच्छादितदेशः । उषरेत्पुरीषानुत्सर्ग-
जेदित्यर्थः । अवगुण्ठितः प्रावृतशिरा ।

याज्ञवल्क्योऽपि—

गृहीतशिश्नोत्थाय मृद्भिरभ्युद्धृतैर्जलैः ।

गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतन्द्रितः ॥

यम—आहरेन्मृत्तिकां विप्रः कूलात्ससिकतां तथा । इति ।

स एव—वार्पाकूपतडागेषु नाहरेद्वाह्यमृत्तिकाम् ।

आहरेज्जलमध्यात्तु परतो मणिवन्धनात् ॥

एतदाग्न्यकविषयम् । तथा च स्मृतिचिन्तामणौ—

अन्तर्जलगता ग्राह्या परतो मणिवन्धनात् ।

आरण्यकेषु त्वेवं स्याद्गाम्येष्वचरणं न तु ॥

मनुः—यस्मिन्देशे तु यत्तोयं या च यत्रैव मृत्तिका ।

सैव तत्र प्रशस्ता स्यात्तया शौचं विधीयते ॥

माधुलः—तीर्थे शौचं न कुर्यात् कुर्वीतोद्धृतवारिणा ।

रत्निमात्रं जलं त्यक्त्वा कुर्याच्छौचमनुद्धृते ।

पश्चात्तच्छोभयेतीर्थं त्वन्यथा त्वशुचिर्भवेत् ॥

आह विवस्वान्—

अक्षमात्रप्रमाणास्तु लिङ्गशौचे मृदः स्मृताः ।

दक्षोऽपि—लिङ्गे तु मृत्समाख्याता त्रिपर्वा पूर्यते यया ।

शौनकः—आर्द्रामलकमात्रा वा मूत्रशौचे तु मृत्तिका । इति ।

अङ्गिराः—प्रथमा प्रसृतिर्ज्ञेया द्वितीया च तदर्धिका ।

तृतीया मृत्तिका ज्ञेया त्रिभागकरपूरणी ॥ इति ।

वसिष्ठः—एका लिङ्गे करे तिस्र उभयोर्मृत्तिकाद्वयम् ।

मूत्रशौचं समाख्यातं शुके तु द्विगुणं भवेत् ॥

शौनकः—मूत्रात्तु द्विगुणं शुके मैथुने त्रिगुणं भवेत् ।

विद्शौचे मृत्संख्यामाह दक्षः—

तिस्रोऽपाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः ।

यत्तु वसिष्ठः—

पश्चापाने दशैकरिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः । इति ।

यदपि यमः—

द्वे लिङ्गे मृत्तिके देये गुदे पञ्च करे दश ।

उभयोः सप्त दातव्याः पुनरेका गुदे तथा ॥ इति ।

तन्—अर्धप्रसृतिमात्रा तु प्रथमा मृत्तिका स्मृता ।

द्वितीया च तृतीया च तदूर्ध्वा प्रकीर्तिता ॥

इति विष्णुत्ताल्पपरिमाणाभिप्रायम् ।

यदपि ग्रन्थः—

मेहने मृत्तिष्ठा. सप्त लिङ्गे द्वे परिकीर्तिते ।

शौचे मृद्वहण-
संख्या । एकस्मिन्विंशतिर्हस्ते द्वयोर्मेयाश्चतुर्दश ॥

तिम्बस्तु मृत्तिका मेयाः कृत्वा तु नखशोधनम् ।

तिम्बस्तु पादयोर्देयाः शौचकामस्य नित्यशः ॥

एनच्छौचं गृहस्थानां तथा गुरुनिवासिनाम् ।

द्विगुणं स्याद्वनस्थानां यतीनां त्रिगुणं भजेन् ॥ इति ।

तदपि पूर्वोक्ताल्पपरिमाणलेपग्राह्यस्योः समुत्थे श्रेयम् ।

वक्षः— पदकृत्वो नखशुद्धौ तु देयाः शौचेप्सुना मृदः ।

मनुः— एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ।

त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥

पितामहः—

न यावदुपनीयन्ते द्विजा. शुद्धास्तथाऽङ्गनाः ।

गन्धलेपश्रयकर शौचमेवा निर्धायते ॥

आदित्यपुराणेऽपि—

स्त्रीशूद्रयोरर्धमानं शौचं प्रोक्तं मनीषिभिः ।

द्विवाशौचस्य निश्चयं पथि पादो विधीयते ।

आर्तः कुर्याद्यथाशक्ति शफ. कुर्याद्यथादिनम् ॥

शुद्धपाराशरः—

उपविष्टश्च विष्मृतं कर्तुं यस्तु न विन्दति ।

॥ कुर्यादर्धशौचं तु स्वस्य शौचस्य सर्वदा ॥ इति ।

शौचायनः—

देशं कालं तथाऽऽत्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम् ।

उपपत्तिमस्या च ज्ञात्वा शौचं प्रकल्पयेत् ॥ इति ।

मनुः— यावन्नापैत्यमेघ्याच्छो गन्धो लेपश्च सञ्चनः ।

सावन्मृद्धारि पादेयं सर्वानु द्रव्यशुद्धिषु ॥

आश्वलायनः—

लिङ्गशौचं पुरा कार्यं शुद्धशौचं ततः परम् ॥ इति ।

देवलः— धर्मविदक्षिणं हस्तमनः शौचे न योजयेत् ।
 तथा च वामहस्तेन नाभेरुर्ध्वं न शोधयेत् ॥
 ब्रह्माण्डे—उदङ्मुखो दिवा कुर्याद्वात्रौ चेदक्षिणामुखः ॥ इति ।
 ऋष्यशृङ्गः—

धाराशौचं न कर्तव्यं शौचशुद्धिमभीप्सुता ।

चुलकेनैव कर्तव्यं हस्तशुद्धिविवानतः ॥

अङ्गिराः—मूत्रोत्सर्गं द्विजः कृत्वा न कुर्याच्छौचमात्मनः ।

मोहाद्भुङ्क्ते त्रिरात्रेण जलं पीत्वा विशुष्यति ॥

अत्र भोजनस्थाने जलपानम् ।

भुञ्जानस्य गुदस्त्रावे बृहस्पतिः—

पूर्वं कृत्वा च शौचं तु ततः पश्चादुपस्पृशेत् ।

ततः कृत्वोपवासं च पश्चगम्येन शुष्यति ॥

शौचस्य ऋतुर्थत्वं पुरुषार्थत्वं चाह दक्षः—

शौचे यतनः सदा कार्यः शौचमूलो यतो द्विजः ।

शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः ॥

अथ शारीरमलशौचम् ।

मनुः— वसा शुष्मसृग् मज्जा मूत्रं त्रिदूषणविण्मलाः ।

श्लेष्माश्च दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥

दूषिका नेत्रमलम् ।

विण्मूत्रोत्सर्गशुद्धयर्थं मृद्वार्यादेयमर्थवत् ।

दैहिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वपि ॥

चौधायनः—

आददीत मृदः पञ्च पट्सु पूर्वेषु शुद्धये ।

उत्तरेषु तु पटस्वद्भिः केवलाभिर्विशुष्यति ॥ इति ।

परकीयस्पर्शे देवलः—

मानुषास्थि वसा विष्टा आर्तवं मूत्ररेतसी ।

मज्जानं श्लोणितं वाऽपि परस्य यदि संस्पृशेत् ॥

स्नात्वाऽपमृज्य चैलादीनाचम्य स शुचिर्मवेत् ।

तान्येव स्वानि संस्पृश्य पुनः स्थात्परिमार्जनम् ॥

विशेषमाह विष्णुः—‘नाभेरधस्तात्प्रबाहुषु च कायिकैर्मलैः सुराभिर्म-

यैवोपहतो मृत्तोयैस्तदङ्गं प्रक्षालनाच्छुध्येत् अन्यत्रोपहतो मृत्तोयैस्तदङ्गं
प्रक्षाल्य स्नानेन इन्द्रियेषूपहतेषूपोष्य स्नात्वा पञ्चगव्येन'

मनु — मूत्रे तिस्र पादयोस्तु हस्तयोस्तिस्र एव तु ।

मृदः पञ्चदशामेध्ये हस्तादीना विज्ञेयतः ॥

एतदात्मीयमूत्रादिसस्पर्शनं उदाहृतम् ।

परस्य शोणितस्पर्शे रेतोविष्णूमूत्रजे तथा ।

चतुर्णामपि वर्णानां द्वारिश्चन्मृत्तिकाः स्मृताः ॥

स एव— ऊर्ध्वं नाभेर्यानि स्थानि तानि मेथ्यानि सर्वेणः ।

यान्यधस्तादमेथ्यानि देहाच्चैव मलाश्चुताः ॥

यथोक्तशौचाकरणे प्रायश्चित्तमुक्तं स्मृतिरत्नावल्याम्—

गायत्र्यष्टशतं चैव प्राणायामत्रयं तथा ॥ इति ।

यत्तु व्यास,—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वविस्था गतोऽपि वा ।

न सरेषुण्डसर्पकक्षे न जालाभ्यन्तरे क्षुप्ति ॥ इति ।

सद्यथोक्तशौचे कृतेऽयात्मसंतोषाभावे द्रष्टव्यम् ।

॥ इति शारीरमलशौचम् ॥

अथाचमनम् ।

मनुः—

आचमननि कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा सान्याचान्त उपस्पृजेत् ।

मिथ्यानि । वेदमध्येष्यमाणश्च अन्नमशनश्च सर्वदा ॥ इति ।

आपस्तम्ब — 'मूत्रपुरीषाग्नलेपाग्नलेपा रेतसश्च यो लेपस्तान्प्रक्षाल्य
पादौ चाचम्य प्रयतो भवति '

आचमनान्तरे देवल —

रेतोमूत्रशकुन्मोक्षे भोजने च परिश्रमे ।

उच्छिष्टं मानवं स्पृष्ट्वा भोज्यं चापि तथाविशम् ॥

आचामेदिति शेषः ।

बृहस्पति —

अधोवायुसमुत्सर्गे आक्रन्दे क्रोधसंभवे ।

मार्जारमूपकस्पर्शे ग्रहासेऽनृतभाषणे ।

निमित्तेष्वेपु धर्मार्थं कर्म कुर्वन्नुपस्पृशेत् ॥
कर्म कुर्वन्काकादिदर्शने आचामेन् इति । स्मृत्यर्थसारे ।
आचारादर्शे संबर्तः—

मार्जारं रजकं वेणुं धीवरं नटमेव च ।
एतान्दृष्ट्वा नरो मोहादाचामेत्प्रयतोऽपि सन् ॥
कौमे— चण्डालम्लेच्छसंभाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषणे ।
उच्छिष्टं पुरुषं स्पृष्ट्वा भोज्यं चापि तथाविधम् ॥
आचामेदश्रुपाते च लोहितस्य तथैव च ।
अग्नेर्गवामथालम्भे स्पृष्ट्वा प्रयतमेव वा ॥
स्त्रीणामथात्मनः स्पर्शे नीवीं वा परिधाय च ॥ इति ।

आपस्तम्बः—‘स्वप्ने क्षवथौ सिंहाणिकायाश्चालम्भे लोहितस्य केशा-
नामग्नेर्गवां ग्राहणस्य स्त्रियाश्चालम्भे महापथं गत्वाऽमेध्यं चोपस्पृश्याप्र-
यतं च मनुष्यं नीवीं परिधायऽप उपस्पृशेद् आर्द्रं वा शकृदोपधीर्भूमिं
वा ’ क्षवधुः क्षुतम् । सिंहाणिका नासामलम् । आर्द्रमिति शकृदादिभिः
संबध्यते । शकृद्रोमयम् ।

यमः— उत्तीर्योदकमाचम्य अवर्तार्थं तथैव च ।

दक्षः— ज्ञानादनन्तरं तावदुपस्पर्शनमिच्छते ।

प्रजापतिः—

उपश्रमे विदिष्टस्य कर्मणः प्रयतोऽपि सन् ।

आचामेदिति शेषः ।

वसिष्ठः—कृत्वा चावश्यकार्याणि आचामेच्छौचवित्तमः ।

मार्कण्डेयपुराणे—

देवार्चनादिकार्याणि तथा शुर्वभिवादनम् ।

तुर्वीत सम्यगाचम्य तद्देव मुजिक्रियाम् ॥

हरितः—‘देवतामभिगन्तुकाम आचामेन्’

शातातयः—

आचामेचर्चणे नित्यं मुक्त्वा ताम्बूलचर्वणम् ।

ओष्ठौ विलोमकौ स्पृष्ट्वा वासौ विपरिधाय च ॥

॥ इत्याचमननिमित्तानि ॥

वृहस्पति—

मरुदायमन प्रचरन्नत्रपानेषु यदोच्छिष्टमुपस्पृजेत् ।
निमित्तानि । भूमौ निधाय तद्द्रव्यमाचान्त प्रचरेत्पुन ।

निधाय त्यक्त्वा ।

तैजसविषये कौर्म—

तैजस वै समादाय यदुच्छिष्टो भवेद्विज ।

भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्याभ्युक्षयेत्तु तन् ॥ इति ।

यत्तु हेमाद्रि —‘परिवेषण कुर्वन्नुच्छिष्टस्पृष्टस्तदन्नपानादिक भूमौ नि-
धायाचम्य तदभ्युक्ष्य पुनस्तदादाय प्रचरेत्’ इत्याह । तन्न, अत्र भूमौ
निधानमात्रस्योक्ते पुनरादाने मानामागाम् ।

यत्तु मनु —

उच्छिष्टेन तु सस्पृष्टो द्रव्यहस्त कथंचन ।

अनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्त शुचितामियान् ॥ इति ।

तद्विषयस्तुविषयमिति मेधातिथि । निधानायोग्यवस्त्रादिविषयमिति च-
न्द्रिकायाम् । तदेतच्चिन्त्यम् ।

यद्यमत्र समादाय भवेदुच्छेपणान्वित ।

अनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्त शुचितामियात् ॥

यस्मादिषु विकल्प त्याक्तस्पृष्टा चैव मेव हि ।

इति कौर्मवाक्यादेव ध्यवस्थोक्ते । काष्ठपात्रे विशेषमाह निधान प्रकृत्य
जैधायन —‘एतदेव विपरीतमत्रे धानस्पत्ये विकल्प’

पक्वान्नमादाय मूत्रादिकरणे विशेषमाह मार्कण्डेय —

पक्वात्रेण गृहीतेन मूत्रोच्चार करोति य ।

अनिधायैव तद्द्रव्यमङ्गे कृत्वा समाश्रितम् ।

शौच कृत्वा यथान्यायमुपस्पृश्य यथाविधि ।

अन्नमभ्युक्षयेचैव उद्धृत्यार्कस्य दर्शयेत्

त्यक्त्वाग्रमात्र वा तस्मान्छेप शुद्धिमवाप्नुयात् ॥

यत्तु श्लोकापस्तम्ब —

भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्य शौच कृत्वा यथाविधि ।

उत्सङ्गापन्नपक्वान्न उपस्पृश्य तन् शुचि ॥ इति ।

तदशक्तविषयम् (१)।

अरण्येऽनुदके रात्रौ चोरव्याघ्राकुले पथि ।

कृत्वा मूत्रं पुरीषं तु द्रव्यहस्तो न दुप्यति ॥

इति बृहस्पतिस्मरणात् ।

स्मृत्यर्थसारे—‘परिवेषणे रजोदृष्टौ तत्स्पृष्टाग्नस्य त्यागः । अन्नाधारे चण्डालसूतिकोदक्यादिस्पृष्टे च त्याग एव । रजकादिस्पृष्टे जलेनाप्ला-
व्याग्निमर्कं वा स्पृशेन् ’ । इति सकृदाचमननिमित्तानि ।

द्विराचमननिमित्तान्याह आपस्तम्बः—

द्विराचमननि- स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुमे भुक्ते रथ्योपसर्पणे ।
निमित्तानि । आचान्तः पुनराचामेद्वासो विपरिधाय च ॥

व्यासः— दाने भोजनकाले च संध्योरुभयोरपि ।

आचान्तः पुनराचामेज्जपहोमार्चनेषु च ॥

पैठीनसिः—‘कृतमूत्रपुरीषः पञ्चनखाद्यग्नेर्हं स्पृष्ट्वा आचान्तः पुन-
राचामेषण्डालम्लेच्छसंभाषणे च’

कौमै— जोष्टौ विलोमकौ स्पृष्ट्वा वासो विपरिधाय च ।

रेतोमूत्रपुरीषाणामुत्सर्गेऽनुद्वभाषणे ॥

ष्टीकित्वाऽध्ययनारम्भे कासश्वासागमे तथा ।

चत्वरं वा स्मशानं वा समागम्य द्विजोक्तमः ।

संध्योरुभयोस्तद्वदाचान्तोऽप्याचमेत्पुनः ॥

शौभायनः—

भोजने हवने दाने उपहारे प्रतिग्रहे ।

हविर्मग्नकाले च तद्विराचमनं स्मृतम् ॥

शङ्खः— स्नानभोजनकालेष्वचान्तः पुनराचमेन् ॥

पैठीनसिः—‘कलितकासश्वासागमने रथ्याचत्वरस्मशानाक्रान्तेष्व-
चान्तः पुनराचमेन् ’

आचमनापवादमाह याज्ञवल्क्यः—

मुग्गजा विष्णुषो मेध्यास्तथाचमनविन्दवः ।
आचमनापवादः । अमृतं चास्यगत्तं दन्तमर्कं त्यक्त्वा ततः शुचिः ॥

विष्णुषोऽङ्गेऽनुपलभ्यमानाः ।

नोच्छिष्टं कुर्वते मुग्ग्या विष्णुषोऽङ्गं न यान्ति याः ।

इति बोधायनोक्ते ।

स्मृत्यर्थसारे—

वेदाभ्यासे मुखाज्जाता शुद्धा एव तु सर्वतः ।

दन्तसक्तस्य निगरणमाह स एव—

परिच्युतेष्ववस्थानान्निगिरन्नेन तच्छुचिः ।

निगरणत्यागयोर्विकल्प इति हेमाद्रि —

चर्वणे त्याचामेन् । तथाचाचमनं प्रकृत्य 'चर्वणे नित्यम्' इति विष्णुक्तेः ।

उलाटप्रस्थाविते तु देवल आह—

भोजने दन्तलग्नानि निर्नित्याचमन चरेत् ।

दन्तलग्नस्य जिह्वास्पर्शे रसोपलब्धौ चाशुचित्वम् । अन्यथा शुचित्वम्
'दन्तनदन्तलग्नेषु रसवर्जमन्यत्र जिह्वास्पर्शनात्' इति शङ्खोक्तेः । गौ-
तमस्त्वन्यथाऽऽह—'दन्तशिष्टेषु दन्तवदन्यत्र जिह्वाभिस्पर्शनात्प्राक्च्युते-
स्तिष्ठेरे' । किंच दन्तलग्नमपि अपहार्यम् ।

दन्तलग्नमसहार्यं लेप मन्थेत् दन्तवन् ।

न तत्र वृक्ष कुर्याद्यत्नमुद्धरणे पुनः ।

भवेदाशीचमत्यर्थं मृणवेधाद्वर्णे कृते ॥ इति देवलोक्तेः ।

पदत्रिशन्मते—

साम्बृले च फले चैव भुक्तमेवावशिष्टके ।

त्यग्भिः पत्रैर्मूलफलैस्तृणकाष्ठमयैस्तथा ।

मुगन्धिभिस्तथा द्रव्यैर्नोच्छिष्टस्तु भवेद्विज ॥ इति ।

वनिष्ठ — प्राणाहुतीषु सोमेषु मधुपर्के तथैव च ।

आस्यहोमेषु सर्वेषु नोच्छिष्टो भवति द्विजः ॥ इति ।

आस्यहोमेषु दष्टावशिष्टमक्षणेऽपि हेमाद्रि । आश्वलायनीयैस्तु
पुष्पैर्वाचमनं कार्यमेव एतद्वाक्येन सर्वेषु प्राणाहुत्यादिषु आचमनाभावे
सेद्वेऽपि "न सोमेनोच्छिष्टा भवन्ति" इति तस्मिन्नेन तान्प्रति मधु-
र्वादिष्वनुच्छिष्टतापरिसंख्यानात् । अथ एव वृत्तिरुच्छिष्टोऽप्याशयः ।

॥ इति द्विराचमननिमित्तानि ॥

अथाचमनविधिः ।

चूडपागशरः—

कृत्वाऽथ शौचं प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च मृज्जलैः ।

निवद्धाशिक्षकच्छस्तु द्विज आचमनं चरेत् ॥

स्मृत्यर्थसारे—

सौवर्णरौप्यताम्रैस्तु वेणुवित्वाश्मचर्मभिः ।

अलावुदारुपत्रैस्तु नारिकैः कपिधकैः ॥

तृणकाष्ठैर्जलाधारैरन्यान्यन्तरितमृन्मयैः ।

घामेनोद्धृत्य वाऽऽचामेदन्यदातुरसंभवे ॥

गौतम.—‘त्रिअतुर्था अप आचामेत्त्वानि चोपस्पृशेत्’ ‘चतुर्वेत्ये-
च्छिको विकल्पः’ इति भावकः । त्रयेणापरितोष इति श्रीदत्तः । फलभू-
मार्थमिति केचिन् । योगी—

त्रिः प्राश्यापो द्विरुन्मृज्य रान्यग्निः समुपस्पृशेत् ।

अयं च द्विजातिविषयः ‘स्त्री च शूद्रश्च सकृत्स्पृष्टाभिरन्ततः’ इति
तेनैव स्त्रीशूद्रयोः सकृद्विधानात् ।

स एव—अन्तर्जानुं शुचौ देशे उपविष्ट उद्धृत्य मुखः ।

प्राग्वा प्राक्षेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥

अत्र—द्विजमहणात्स्त्रीशूद्रयोरनियम इति हेमाद्रिः । तथाच प्राक्षं
सर्वं साधारणं, कायदैवे तु प्राक्षणं प्रत्येव ।

तथाच मनुः—

प्राक्षेण विप्रस्तीर्थेन सर्वकालमुपस्पृशेत् ।

कायत्रैदशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन ॥ इति ।

त्रैदशिकं दैवम् ।

अत्र नित्यपदात्सर्वदा प्राप्तेणैव तस्य घ्राणाद्युपघाते तूत्तराभ्यामिति
व्यवस्थितो विकल्पः । उत्तरयोस्त्वैच्छिकः ।

याज्ञवल्क्यः—

‘अग्निष्टोदोदितन्यद्भृष्टमूलान्धमं फलस्य च’ ।

प्रजापतिपितृप्रदादेवतीर्यान्यनुकमान् ॥

बौधायनः—‘निर्वपणसंस्त्रवणलाजाहोमनित्यहोमान्कायतीर्थेन धुर्यादे-
वेन दैविकं च पैतृकं पित्र्येण कमण्डलुस्पर्शनं दधिस्पर्शनं नवान्नप्राशनं-

सुगमहणं दैविकं सौम्येन आग्नेयेन प्रतिग्रहं कुर्यात् । अङ्गुलिमूले सौम्यं,
करमध्ये आग्नेयम् ।

देवलः— उभयत्र स्थितैर्दर्भैः समाचामति यो द्विजः ।

सोमपानफलं सोऽपि भुक्त्वा यज्ञफलं लभेत् ॥

उभयत्र हस्तद्वये । केवलवामहस्ते निषेधमाह हारीतः—

वामहस्ते कुशान्कृत्वा समाचामति यो द्विजः ।

उपस्पृष्टं भवेत्तेन रुधिराण्य मलेन वा ॥ इति ।

विष्णुः— ग्रन्थिर्यस्य पवित्रस्य न तेनाचमनं चरेत् ।

शङ्खः— काशहस्तस्तु नाचामेत्येकाचिद्वेधशङ्कया ।

वेधशङ्कयेति तु 'तेन ह्यन्नं क्रियते' इति वदर्थवादमात्रम् । दूर्वाहस्तो-
ऽपि वा इति स्मृत्यर्थसारे ।

घौषायनः— 'नाङ्गुलीभिर्न सङ्कुशभिर्न सफेताभिर्न क्षाराभिर्नो-
ष्णाभिर्न कलुषाभिर्गन्धिर्न हसन्न जल्पन्न विलोम्यन्न तिष्ठन्न ग्रहो न
प्रणतो न मुक्तशिरः नावद्वक्छ्रो न बहिर्जानूपस्पृशेत् नाञ्जलिना
पिषेत्रानुद्धृतोदकेनाचामेत् । न तिष्ठन्' इति तु स्थले ।

जले तु विशेषमाह विष्णुः—

जान्वोरुर्ध्वं जले तिष्ठन्नाचान्तः शुचिनामियान् ।

जलस्यो जलकृत्येषु स्थलस्थः स्थलकर्मसु ।

उभयोस्तूभयस्थस्तु कर्मस्वधिकृतो भवेत् ॥

हारीतः— आर्द्रवासा जले कुर्यात्तर्पणाचमनं ऋषम् ।

शुष्कवासाः स्थले कुर्यात्तर्पणाचमनं ऋषम् ॥

न एव— विवर्णं गन्धरसोयं फेनिलं च विवर्जयेत् ।

देवलः— सोपानत्को जलग्नो वा मुक्तकेशोऽयथा पुनः ।

उष्णीषी वापि नाचामेदूग्धेणावेष्टय वा शिरः ॥

संवर्तः— अशब्दाभिरनुष्णाभिरुष्णानिः फेनमुद्धृदैः ।

आपद्रतेन शुद्धिः स्यादुष्णेन शृतपायिनः ॥

आपद्रतेनेति तृतीया पञ्चमर्थे धोद्धव्या । तेनापद्रतस्य शृतपायिन
उष्णेनाऽपि शुद्धिमित्यर्थः ।

घौषायनः—

पादक्षालनशेषेण नाचामेद्वारिणा द्विजः ।

शुद्धाभावे भवेत्किञ्चित्पक्त्वा भूमौ तु तज्जलम् ॥

आचारप्रदीपे आपस्तम्बः—

संभार्ये भोजनार्ये वा पित्र्यार्ये वा तथैव च ।

शुद्धाहतेन नाचामेज्जपादिहवनेषु च ॥

यमः— आपः करनखस्पृष्टाः समाचामति यो द्विजः ।

सुरां पियति मुन्यक्तां यमस्य वचनं यथा ॥ इति ।

आपस्तम्बः—

न यथेवारास्वाचामेत्तथा च प्रदरोदके ।

प्रदरो गर्तः । तत्प्रतिप्रसवमाह वसिष्ठः—‘प्रदरादपि गोस्तर्पणात्स्यात्’
इति । इदं तु कलौ निषिद्धमिति कलिवर्जनिर्णये भ्रातृचरणाः ।

गोतृमिश्रिष्टे पयसि शिष्टैराचमनक्रिया ।

इतिकलिनिषिद्धेषु पाठात् ।

देवलः— येषु देशेषु यत्तोयं या च यत्रैव मृत्तिका ।

तत्र तन्नाबमन्येत धर्मस्तत्रैव तादृशः ॥ इति ।

विष्णुः— न गच्छन्न शयानश्च न स्थितः ग्रह एव च ।

न स्पृशन्न हस्तशल्पन्न श्वचाण्डालदर्शने ॥

गोभिलः—

नान्तरीयैकदेशस्य कृत्वा चैवोत्तरीयताम् ॥ इति

आचामेद्विति शेषः ।

प्रचेताः—‘न निर्वासा नान्बत्कुर्वन्नासनपाद आचामेन्’ ।

पुलस्त्यः—

कण्ठं शिरो वा ध्रावृत्य रथ्यापणगतोऽपि वा ।

अकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेन् ॥

आचमनात्पूर्वं गण्डूपानाह प्रयोगपारिजाते आचार्यः—

कुर्याद्वादश गण्डूपान्पुरीपोत्सर्जने द्विजः ।

मूत्रोत्सर्गे तु चतुर्गे भोजनान्ते तु षोडश ।

भक्ष्यमोज्यावसाने ॥ गण्डूपाष्टक्रमाचरेत् ॥

वामहस्तेनान्वारम्भमाह यमः—

तावन्नोपस्पृशेद्विद्वान् यावद्दामेन न स्पृशेन् ।

अपा पर्युक्षणमाह नागदेवाये श्याट्यायानि—

['त्रिभिः पर्युक्षणं कुर्यात्पात्रोपरि त्रिभिः सदा ।
त्रिन्दुं च निक्षिपेन्मध्ये शेषं शुष्यति त्रिन्दुभिः ॥

विशेषमाह याज्ञवल्क्य]—

हृत्कण्ठतालुगामिस्तु यथासरयु द्विजातय ।
शुष्येरन्ध्री च शूद्रश्च स्रुत्स्पृष्टाभिरन्ततः ॥

स्रुदिति त्रित्वमात्रापवादक न तु सर्वेति कर्तव्यताया । तेन सर्वा-
ऽप्यङ्गस्पर्शनादिरूपेति कर्तव्यता स्त्रीशूद्राभ्यां कर्तव्यैव । अन्तत इति तृती-
यार्थे तसि । तालुगामि इति विज्ञानेश्वर । दन्तगामिरिति हेमाद्रिः ।
ओष्ठप्रान्तेनेति श्रीदत्त । इद्वाना परिमाणमाहोशना — 'मापमञ्जनमात्रा
हृदयगमा भवन्ति इति ।

ग्रहणे विशेषमाह ऋषयः—

आयत पूर्वतः कृत्वा गोकर्णादृतिवत्तरम् ।
सहताहुलिना तोयं गृहीत्वा पाणिना द्विज ।
मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठेन शेषेणाचमनं चरेत् ॥

भरद्वाज —

देव्या पादैस्त्रिभिः पीत्वा अस्त्रिङ्गैर्नरया स्पृशेत् ।
पुनर्यादृतिगायत्र्या शिरोमन्त्रैर्द्विधा स्पृशेत् ॥

यौधायन — 'त्रि परिमृजेद्विरिलेने' इति । ओष्ठाविति शेषः ।
'तौ च विलोमकौ' इति हेमाद्रिः ।

शङ्ख — तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेत्तासापुटद्वयम् ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां च चतुर्थोत्रे पुनः पुनः ॥
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोर्नीभिः हृदयं च तलेन वै ।
सर्वाभिरुत्तमं शीर्षं याह्वापमेण संस्पृशेत् ॥

भास्वलायन —

जले शुद्धे पिपेदेदश्रुतुर्गङ्गयु रानैर्द्विज ।
प्रमृजेद्विरथवेण पुराणैश्चेतिहासकैः ॥

१ कुण्डलिः क. नलि । २ अङ्गुष्ठस्य अङ्गुष्ठमिति वाच्येन मन्त्रं स्पृशेत् । क. स्पृश । ३
गौ स्पृशेत्कन्यायं १५ । क. स्पृश । ४ नीभिः च हृदये तद्विषये नीभिः तु । सरादेऽपि
तत् शीर्षं वामाचमने विधिः । क. वाह ।

मुखमङ्गुष्ठमूलेन पृथक्काय उपस्पृशेत् ।
 पाणिनाऽधोऽग्निमन्त्रेण अवमृज्याथ संस्पृशेत् ॥
 विप्रस्तु नेतराणां तु तन्मुखालम्भनं स्मृतम् ।
 सूर्याय दक्षिणे नेत्रे वामे सोमाय वायवे ॥
 नासे दिग्भ्यः श्रवणयोर्वाहोरिन्द्राय संस्पृशेत् ।
 पृथिव्यै पादयोर्जान्वोरन्तरिक्षाय गुह्यके ॥
 दिशे नाभ्यां ब्रह्मणे च विष्णवे हृदये तथा ।
 शिवायेति शिरस्यन्ते हस्तं प्रक्षालयेत्ततः ॥ इति ।

अगस्त्यसंहितायाम्—

केशवाद्यैस्त्रिभिः पीत्वा द्वाभ्यां प्रक्षालयेत्करौ ।
 द्वाभ्यामोष्ठौ तु संस्पृज्य द्वाभ्यामुन्मार्जनं तथा ॥
 एकेन हस्तं प्रक्षाल्य पादावपि तथैकतः ।
 संप्रोक्ष्यैकेन मूर्धानं ततः संकर्षणादिभिः ॥
 आस्यं नासाक्षिकर्णौ च नाभ्युरस्कं भुजौ स्पृशेत् ।
 एवमाचमनं कृत्वा साक्षान्मारायणो भवेत् ॥

अत्रैतानि केशवादिष्णान्तानि चतुर्विंशतिनामानि चतुर्ध्वन्तानि
 नमोन्तानि प्रथमैकवचनान्तानि घोषार्याणि । केचित्तु संयुष्यन्तान्युशार-
 यन्ति तत्रापि विष्णुपदं हरिपदं चाविभक्तिकमेवोशारयन्ति । तत्साधु-
 नेव प्रयुञ्जीतेतिर्बचनाश्रित्यम्

आचमनासंभवे मार्कण्डेयपुराणे—

आचमनासंभवे देयतानां पितॄणा च ऋषीणां चैव यत्नतः ।
 प्रतिनिधिः । पुर्वात्तालम्भनं वापि दक्षिणश्रवणस्य वा ।
 यथाविभवतो होतत्पूर्वाभावे ततः परम् ॥

दोधायनः—‘आर्द्रतृणं भूमिं गोमयं वा संस्पृशेत्’

आचमनस्य सर्वकर्माद्भूत्वमुक्तं पुराणसारे—

यः क्रियाः कुरुते मोहादनाचम्यैव नास्तिकः ।
 भवन्ति हि क्रियास्तस्य शृयाः सर्वा न संशयः ॥ इति ।
 ॥ इति आचमनप्रकरणम् ॥

अथ दन्तधावनम् ।

अत्रि — सुरे पर्युषिते नित्यं भक्त्यप्रयत्नो नरः ।

तदार्द्रकाष्ठं शुष्कं वा भक्षयेदन्तधावनम् ॥

इदं च शुद्धपर्यं न तु स्नानाद्यङ्गम् । 'दन्तान्प्रक्षाल्य स्नायान्' इति
छन्दोगपरिशिष्टे तु—'दर्शपूर्णमासाभ्यामिष्ट्वा सोमेन यजेत' इतिवत्का-
लार्थः संयोगः । मदनोऽप्येवम् । इदं च भोजनानन्तरमपि कार्यम् ।

प्रातर्भुक्त्वा च यतगाक् भक्षयेदन्तधावनम् ।

इति विष्णुतेः । 'भुक्त्वेति यतिपरम्' इति हलायुधीये, सर्व-
प्रतीति श्रीदत्तः । अत्र च कालादिनिषेधो नास्ति ।

भोजने दन्तलगादि निर्हृत्पाचमनं चरेन् ।

इति देवलोत्तेरुच्छिष्टनिर्हरणस्यावश्यकत्वान् ।

कात्यायनः—

नन्दासु च नवम्या च दन्तराष्ट्रं विवर्जयेन् ।

विष्णु.—नवम्या चैव द्वादश्यां वर्जयेदन्तधावनम् ।

[आश्राद्धे जन्मदिवसे विवाहे मुरदुःखयोः ।

प्रते चैवोपवासे च वर्जयेदन्तधावनम्]

व्यास—

आश्वे च यस्ते नियमे नाद्यात्प्रोषितभर्तृका ।

आश्ववर्तृनिषेधोऽयं न तु भोगः वदावन ॥

नाद्यादन्तराष्ट्रमिति शेषः ।

आचार्य—

अष्टम्योश्च पतुर्दशयोः पञ्चदश्या त्रिजन्मसु ।

व्यतीपाते च संक्रान्त्या दन्तकाष्ठं न भक्षयेन् ॥

नाद्यादर्जीर्णमथुश्वासकासज्वरार्दित ।

पुरोदयाद्रवेत्स्वयाम्नोदितेऽन्वमिते रघौ ॥

दीक्षितो ब्रह्मचारी च यत्किञ्च विभवाऽङ्गना ।

नित्यमद्यादन्तराष्ट्रममाया तु विवर्जयेत् ॥

त्रिजन्मसु जन्मदातुनरभेवेति' इति केचिन् जन्मनयमैवोपनिषत्ति-
केयिनि ज्योतिषिकाः ।

नृसिंहपुराणे—

प्रतिपदर्शपष्ठीषु नवम्यां चैव भारत ।

दन्तानां काष्ठसंयोगो दहत्यासममं कुलम् ॥

काष्ठप्रहणात्पर्णादौ न दोषः ।

तथाच व्यासः—

प्रतिपदर्शपष्ठीषु नवम्यां दन्तधावनम् ।

एणैरन्यत्र काष्ठैस्तु जिह्वोद्वेखः सदैव तु ॥

‘तृणपर्णैर्मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैर्निपिद्धाहे कुर्युः’ इति स्मृत्यधसारे ।

व्यासः— अलाभे दन्तकाष्ठानां निपिद्धायां तियायपि ।

अपां द्वादशगण्डूपैर्विदध्यादन्तधावनम् ॥

स्कान्दे— अभ्यङ्गे चोदधिस्राने दन्तधावनमैथुने ।

जाते च मरणे चैव तत्कालव्यापिनी तिथिः ॥

यमः— चतुर्दश्यष्टमी दर्शः पूर्णिमा संक्रमो रवेः ।

एषु स्त्रीतैलमांसानि दन्तकाष्ठं च वर्जयेत् ॥

वसिष्ठः— शन्यर्कशुक्रवारेषु कुजाहे व्रतवासरे ।

जन्माहे श्राद्धदिवसे दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥

यमः— मध्याहे स्नानवेलायां भक्षयेदन्तधावनम् ।

निराशास्तस्य गच्छन्ति देवताः पितृभिः सह ॥

अत्र ‘नोदिते’ इत्यनेनैव मध्याह्ननिषेधे सिद्धे पुनर्निषेधो दोषाधिक्यार्थः ।

गोभिलः—

रजस्वला सूतिका च वर्जयेदन्तधावनम् ।

स्मृतिमञ्जर्याम्—

रजस्वला चतुर्थेऽह्नि सूतिका दशमेऽह्नि ।

स्नानात्पूर्वं यन्धमोक्षे निन्देष्वापि चरेदिति ॥

नागदेवीये—

चिरं दन्तेषु केशेषु चिरं मूत्रपुरीषयोः ।

चिरं स्नाने च शीघ्रं च मैथुने शयनेऽश्ने ॥

व्यासः— प्रशाल्य पादौ हस्तौ च मुखं च सुसमादितः ।

दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य कृत्वा जान्वन्तरा ततः ॥

तित्तं कपायं च तथा कटुकं कष्टकान्वितम् ।
क्षीरिणो वृक्षगुल्मादेर्भक्षयेदन्तधावनम् ॥

‘ दक्षिणं बाहुमुद्धृत्योपवीतं वृत्वा ’ इति श्रीदत्तः ।

विष्णु — कष्टविक्षीरवृक्षोत्थं द्वादशाङ्गुलमग्रणम् ।
कनिष्ठाङ्गुलिक्लृप्त्यूलं तैदमृत्तमूर्चनम् ॥

कौमं— मध्याङ्गुलसमस्थूलं द्वादशाङ्गुलसंमितम् ।
सत्त्वचं दन्तफाष्ठं स्यात्तदमेण तु धावयेत् ॥

इदं विषमदन्तस्य इतरस्य तु कनिष्ठाग्रसमस्थूलम् ॥

दन्तकाष्ठमानम् । सुसूक्ष्मं हीनदन्तस्य समदन्तस्य मध्यमम् ।
स्थूलं विषमदन्तस्य त्रिविधं दन्तधावनम् ॥ इति विष्णुकेः ।

विष्णु — द्वादशाङ्गुलिकं विप्रे काष्ठमाहुर्मनीषिणः ।
शूद्रविद्वज्जजातीनां नवपञ्चतुरङ्गुलम् ॥

गार्ग— चतुरङ्गुलमानं तु नारीणां नात्र संशयः । इति ।

नृसिंहपुराणे—

तित्तिर्णावेणुपृष्ठं च आग्रनिन्द्यी तथैव च ।
अपामार्गश्च तिलश्च अर्धशौदुम्बरस्तथा ॥
यदरीतिन्दुकस्तवेते प्रशस्ता दन्तरावने ।
कोविदारः करञ्जश्च कुटजः शृङ्गमालती ॥

गार्ग — सज्जं धैर्यं धटे दीप्तिः करञ्जे विजयो रणे ।
शृङ्गजे चार्थसंपत्तिर्नैर्दर्या मधुरस्वरः ॥

रादिरे वैव सौभाग्यं तिले ॥ विपुलं धनम् ।
शौदुम्बरे च वाक्मिद्विर्वैर्यं ॥ तदा मतिः ॥
सैन्धे च कीर्तिसौभाग्यं पालाशे सिद्धिरुत्तमा ।
कदम्बे सफला लक्ष्मीराम्रे आरोग्यमेव च ॥
अपामार्गे श्रुतिर्मेधाप्रज्ञावातिर्वैष्णु श्रुतिः ।
आयुः शीलं यशो लक्ष्मी सौभाग्यं चोपजायते ॥
अनेण हन्ति रोगास्तु वीजपूरेण तु व्ययाम् ।
दाडिमे सिन्धुकारे च उटजे कुटजे तथा ॥

दन्तकाष्ठे प्रशस्तं
इति शब्दार्थः च ।

१ शिङ्गपत्रं क. वटः । २ कुशवंतं लतावृक्षम् क. वटः । ३ शिङ्गपत्रं क. वटः ।

४ सैन्धे क. वटः । ५ वैर क. वटः ।

जाती च करमर्दा च दुःस्वप्नं नाशयेदिति ।
ककुभेन तथाऽऽयुष्मान् भवेत्पलितवर्जितः ॥

ककुभः प्रसेवकः ।

आश्वलायनोऽपि—

अपामार्गे सर्वसिद्धिः स्त्रीवश्यत्वं प्रियङ्गुभिः ।
वेणुना चाग्नयाद्वावो राजवृक्षाज्यं लभेत् ॥
धूते च नृपवश्यत्वं सौभाग्यं पनसेन तु ।
दीर्घायुर्जम्बुवृक्षेण इष्टां सिद्धिं लभेदयम् ॥
जयं कण्टकवृक्षात्तु यलं वै कङ्कताहमेत् ।
आरोग्यं कर्णिकारेण पारन्त्यां शौर्यमुत्तमम् ॥
अशोकेन विशोकः स्याद्वज्रह्माद्रहसवर्चसम् ।
स्यादिरादखिलान्भोगैर्हमेदतिशयं महः ॥
वाग्यतो विभृजेदन्तान्मांसं नैव तु पीडयेत् ।
जिह्वामलान्तमुदितं दन्तान्तरितमेव च ॥
राक्षस्यामुत्सृजेत्काष्ठं दिशि निर्भृशं वै शुचौ ॥

राजवृक्षो राजादनम् ।

वर्ष्पानाह घृक्षयाज्ञवल्क्यः—

इष्टिकालोष्टपापाणैर्नैरङ्गुलिभिस्तथा ।
मुक्त्वा चानामिकाङ्गुष्ठौ वर्जयेदन्तबावनम् ॥

तथा च—दक्षिणाभिमुखो नाद्याग्नीलं धवरुदम्बकौ ।

तिन्दुकेहृदयन्धूस्मोर्चाकरजसिन्धुकम् ।

कार्पासं दन्तकाष्ठं च विष्णोरपि हरेच्छिद्रम् ॥

नीलं नीलीवृक्षः । धवः प्रसिद्धः । मोचा कदली ।

• आचार्यः—

नादण्डं न त्वचा ह्रीनं नाप्रशस्ततरुद्वयम् ।

मुहिकिङ्गुकशात्मलीकरादींश्च वर्जयेत् ॥

तथा—कोविदारैर्दुर्दाशैव शात्मलीवृक्षसिद्धकाः ।

श्यामाकं पारिभद्रं च गुग्गुलं पिच्छिलं तथा ॥

१ वृक्षे क. पाठः । २ दध क. पाठः । ३ दिशि वशो महत् क. पाठः । ४ मांयाना मन्तीत्या क. पाठः । ५ वाऽशुचौ क. पाठः । ६ वाग्यसिद्धकन् क. पाठः । ७ ऽऽय क. पाठः ।

पूतिगन्धाम्लमधुरं सुशिरं दन्तधावनम् ।

प्रतीचीं दक्षिणाशां च वर्जयेदन्तधावने ॥

पूतिगन्धं दुर्गन्धिः ।

विष्णुः— न श्लेष्मातृकारिष्टविभीतष्वध्वनम् ।

न कोविदारशमीपीलुपिप्पलेदृदगुग्गुलम् ।

न वरेरनिर्गुण्डीशिमुतिलकतीलजम् ॥

हारीतः— 'शलेयपलाशकोविदारश्लेष्मातृकविल्यकृशाकटूक्षनिर्गुण्डी-
शिरःपण्डीशिरीषमालतीकरवीरचद्रीकरजबेगुवर्ज्यम्' इति ।

गर्गः— कुशं काशं पलाशं च शिशुर्पं यस्तु भक्षयेत् ।

तावन्नशति चाण्डालो यावद्दृक् न पश्यति ॥

व्यासः— पालाशमासनं यानं दन्तकाष्ठं च पादुके ।

वर्जयेत्तु प्रयत्नेन सममश्रयमेव च ॥

मारुण्डेयः—

शाल्मल्यश्वत्थभट्टीनां धवर्किमुकुरोरपि ।

कोविदारशमीतालश्लेष्मातृकविभीतकैः ।

वर्जयेदन्तकाष्ठं च गुग्गुलं क्रमुकं तथा ॥

वराहमिहिरः—

जज्ञातपूर्वाणि न दन्तकाष्ठान्यद्यान् पर्णेश्च समन्वितानि ।

न युग्मपर्णानि न पाटितानि न चोर्ध्वमुष्काणि विना त्वचा वा ॥

अत्र पानिचिस्तामान्यतो निषिद्धान्यपि कामार्थत्वेन विहितत्वान्
तत्कामनावद्भिर्माहाण्येव । यानि तु केवलं विहितप्रतिषिद्धानि तेषु न
तौ पशौ करोतीति वदिकस्य इति स्मृतिचन्द्रिकायाम् । विहितालाभे-
ऽप्रतिषिद्धं तदलाभे विहितप्रतिषिद्धमेव ग्राह्यमिति सर्वे । विहितालाभे-
ऽप्रतिषिद्धविहितप्रतिषिद्धयोरैच्छिको विकल्प इत्यपि वक्षिम् ।

आश्वलायनः—

नाहुर्लाभिश्च मृत्रिश्च पर्णैर्लोष्ठैश्च भस्मना ।

नायसैश्च तथा लोहैः सर्वेदन्तान् मृजेद्विजः ॥

शातातपः—

दन्तधावनमहुत्या प्रत्यशं लवणं तथा ।

मृत्तिकाभक्षणं चापि मुन्यं गोमांसभक्षणम् ॥

१. विहितालाभाभावात्करोतीति वदिकस्य इति स्मृतिचन्द्रिकायाम् । २. नाहुर्लाभिश्च मृत्रिश्च पर्णैर्लोष्ठैश्च भस्मना । ३. नायसैश्च तथा लोहैः सर्वेदन्तान् मृजेद्विजः ॥

प्रयोगपारिजाते धर्मसारे—

अङ्गारवालुकापर्णतृणवस्त्रनखादिभिः ।

न कुर्यादन्तकाष्ठं च श्रीकामी हृषिति दिने ।

न कुर्यादन्तकाष्ठं च तैले च शिरसि स्थिते ॥

दिग्विशेषेण फलंमाह विष्णुः—

प्राङ्मुखस्य धृतिः सौख्यं शरीरारोग्यमेव च ।

दक्षिणेन तथा कष्टं पश्चिमेन पराजयः ॥

उत्तरेण गवां नाशः स्त्रीणां परिजनस्य च ।

पूर्वोत्तरे तु दिग्भागे सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥

दन्तधावनमन्त्रो नागदेवीये—

अन्नाद्याय व्यूहध्वं सोमो राजायमागमत् ।

स मे मुखं प्रमार्क्षति यशसा च भगेन च ॥

अङ्गिराः—प्रक्ष्यात्य भक्षयेत्काष्ठं प्रक्ष्यात्यैव तु संत्यजेत् ।

“आयु” रित्यादि मन्त्रोऽयमुक्तः शास्त्राभिमन्त्रणे ॥ इति ।

मन्त्रः काशीखण्डे—

आयुर्वलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।

प्रह्न प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥

दन्तधावनोत्तरं शौनकः—

पञ्चाष्टादशगण्डूपैर्विदध्यादन्तधावनम् ।

स्मृतोद्धारं च गायत्रीं निवध्नीयाच्छिखां ततः ॥ इति ।

अङ्गिराः—पतितान्त्यजपाखण्डिदेवार्जावरजस्वलाः ।

मिषकृपातकिचाण्डाला न प्रेक्ष्या दन्तधावने ॥

शुनकं विद्वराहं च छत्रार्कं ग्रामशुक्लम् ।

अन्याग्रैवेदशान् परयेद्विजशुद्धौ विचक्षणः ॥ इति ।

देवार्जावो देवलकः । द्विजा दन्ताः ।

॥ इति दन्तधावनम् ॥

अथ पवित्रविधिः ।

व्यासः—कुशैः पूतं मवेत्तन्नामं कुशेनोपस्पृशेद्विजः ।

कुशेन चोद्धृतं तोयं सोमपानेन संमितम् ॥

यम — कुशा काशास्तथा दुर्वा यथा ग्रीह्य एव च ।

वत्सजा पुण्डरीकाणि सप्तधा वर्हिरुच्यते ॥ इति ।

शङ्ख — कुशाभावे द्विजश्रेष्ठ काशौ कुर्वीत तत्कृत । इति ।

कात्यायन —

मासे नभस्यमावास्या तस्या दर्भोच्चयो मत ।

अयातयामास्ते दर्भो विनियोज्या पुन पुन ॥ इति ।

प्रयोगपारिजाते स्मृतिचित्तामणौ —

मासि मास्याहता दर्भोस्तत्तन्मास्येन चोदितः । इति ।

मार्कण्डेय —

शुचिर्भूत्वा शुची देशे स्थिरश्च पूर्वोत्तरामुत्तर ।

ओङ्कारेणैव मन्त्रेण कुशान्सृष्ट्वा द्विजोत्तम ॥

विरिञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज ।

दहस्व सर्वपापानि दर्भे रसस्तिरुते भव ॥

इम मन्त्र समुच्चार्य तत पूर्वोत्तरामुत्तर ।

हुक्कारेण दर्भास्तु सकृच्छ्रित्वा समुद्धरन् ॥ इति ।

कात्यायनः —

अनन्तर्गाभिण साम कौश द्विदलमेव च ।

प्रादक्षमात्र विक्षेप पवित्र यत्र कुत्रचिन् ॥

मार्कण्डेय —

चतुर्भिर्दर्भैर्पिञ्जलैर्ग्राह्यमथ पवित्ररुम् ।

एतैरन्यूतमुद्दिष्ट वर्णे वर्णे यथाक्रमम् ॥

पवित्रे दर्भसदृश

त्रिभिर्दर्भैः शान्तिकर्म पञ्चभिः पौष्टिक तथा ।

चतुर्भिरेभिचारास्तु कुर्वन्कुर्यात्पावत्रकम् ॥ इति ।

अत्रि — ब्रह्मयज्ञे जपे चैव ब्रह्मप्रण्यिर्विधीयते ।

भोजने वर्ज्यं शोक्त एव धर्मो न हीयते ॥

हेमाद्रौ — अन्यान्यपि पवित्राणि कुशादूर्वाभ्यानि च ।

हेमात्मकपवित्रस्य कला नाहन्ति पोहन्तीम् ॥ इति ।

पारिजाते आचार्य —

हेमेन सर्वदा सर्वं कुर्याद्वाविचारयन् ।

रौप्यं दक्षप्रदसिन्ध्यां विमृष्यादीश्विनो द्विज ॥ इति ।

दक्षो दक्षिण ।

योगयाज्ञवल्क्यः—

अनामिकाधृतं हेम तर्जन्यां रौप्यमेव च ।

कनिष्ठिकाधृतं स्वर्णं तेन पूतो भवेन्नरः ॥

प्रयोगपारिजाते संप्रहकारः—

उत्तरीयं योगपट्टं तर्जन्यां रजतं तथा ।

न जीवत्पितृकैर्धार्यं ज्येष्ठे भ्रातरि जीवति ॥

[तथा—पादुके चोत्तरीयं च तर्जन्यां रौप्यधारणम् ।

न जीवत्पितृकः कुर्याज्येष्ठे भ्रातरि जीवति ॥]

शारदातिलके—

दारिद्र्यनाशिनी ताम्रतारसुवर्णानामर्केषोऽश्वत्थेन्दुभिः ।

शुभ्राः कृता त्रिशक्तिमुद्रेयं ताम्रदारिद्र्यनाशिनी ॥ इति ।

तारं रूप्यम् ।

अर्चनदीपे—

सोमसूर्याग्निरूपाः स्युर्वर्णा लोहत्रयं तथा ।

रौप्यमिन्दुः स्मृतो हेम सूर्यस्ताम्रं हुताशनः ॥

लोहभागाः समुदिष्टाः स्वराद्यक्षरसंज्ञया ।

तैल्लोहैः कारयेन्मुद्रामसंकलितसंगताम् ॥

विजयदा शुभ्राः ।

सामं सहस्रं संजप्य स्पृष्ट्वा तां जुहुयात्ततः ।

तस्यां संपातयेन्मन्त्री सर्पिषा पूर्वसंख्याया ॥

निक्षिप्य कुम्भे तां मुद्रामभिषेकोक्तवर्त्मना ।

आवाह्य पूजयेद्देवीमुपचारैः समाहितः ॥

अभिषिच्य विनीताय दद्यात्तां मुद्रिकां गुरुः ।

इयं रक्षा क्षुद्ररोगविषज्वरविनाशिनी ॥

व्यालचौरमृगादिभ्यो रक्षां कुर्याद्विशेषतः ।

युद्धे विजयमाप्नोति धारयेन्मनुजेश्वरः ॥

स्वराद्यक्षराण्येकपञ्चाशन् । तत्र षोडशभागा रूप्यस्य । पञ्चविंशति-
स्नाग्रस्य । दश हेमः । साममष्टोत्तरं स्पृष्ट्वा संजप्य जुहुयादित्यन्वयः—
तस्यां मुद्रायां संपातयेन् । संपातानिति शेषः । संख्या ऋषस्य आग्राध्य-
देवताया आगमिष्ठो वैदिको नाममन्त्रो वा ऋषहोमयोर्होयः । मुद्रापटना-
दि सर्वमुपरागसमय एव कार्यमिति सांप्रदायिकाः ।

अथाश्वलायनः—

[हैमेनं सर्वदा सर्वं कुर्याद्देवाविचारयन् ।
रौप्यं दक्षप्रदेशिन्यां विमृयाद्दक्षितो द्विजः ॥]
अग्रन्धिकं च हैमं च तथा लोहत्रयोद्वयम् ।
गायत्र्यश्वरक्वणेण गृहीयाच्चाग्रमुत्तमम् ॥
अनुष्टुभस्तथा रौप्यं त्रिष्टुभः कनकोत्तमम् ।

उषान्नादिषु
भिदिषा मुद्रा ।

गायत्र्यश्वराणि चतुर्विंशतिः । अनुष्टुभो द्वात्रिंशन् । त्रिष्टुभश्चतुश्चत्वारिंशन् ।

शलाका कारयित्वाऽतोऽभिसृजेदङ्गुलीयस्म् ।
एवं लोहत्रयेणैव कृतं रक्षोप्रमुत्तमम् ।
शुद्धयै धार्यं दिवारात्रं त्रयं सममयापि वा ॥
जपेद्द्वामप्रदेशिन्या धृत्वा यस्तत्पवित्रकम् ।
उषादनादिसंसिद्धयै महापत्सु द्विजोत्तमः ॥

नवरत्नमुद्रामाह षोपदेवः—

हिशुं मुचं प्रमं गोरां नीशं वैरुं पुगुं मंनुम् ।
प्राच्या रत्नानि गेदाश्च मध्ये माणिक्यमुष्णगोः ॥

अत्र हिशु—मित्र्याचश्वरद्वन्द्वानि हीरकशुक्लादिमहप्रतिपादकानि ।
प्राच्याः प्राचीमारभ्य । महाः गेदाः । उष्णगू रविः ।

मानसोद्भासे—

अर्धेन्दुरक्तगुरुभृगुमन्दाहिकेतव ।
माणिक्यं मौक्तिकं चारु विद्रुमं गारुडं पुनः ॥
पुष्परामं लसद्वज्रं नीलं गोमेदकं तथा ।
वैडूर्यं नवरत्नानि मुद्रा ता वत्सयेन्दुभाम् ॥
जपहोमादिकं सर्वं कुर्यात्पूर्वाक्षवर्मेना ।
यो मुद्रां धारयेदेतां तस्य सुर्वशमा महा ॥

वशीकरणे न
ब्रह्ममुद्रा ।

रक्षो भीम । अही राहुः ।

॥ इति पवित्रविधिः ॥

अथ स्नानम् ।

योगयाज्ञवल्क्यः—

अस्नात्वा नाचरेत्कर्म जपहोमादि किंचन ।
 लालास्वेदसमाकर्णः शयनादुत्थितः पुमान् ॥
 स्विद्यन्ति हि सुषुप्तस्य इन्द्रियाणि स्रवन्ति च ।
 अङ्गानि समतां यान्ति चोत्तमान्यधमैः सह ॥
 अत्यन्तमलिनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः ।
 स्रवत्येव दिवा रात्रौ प्रातः स्नानं विशोधनम् ॥
 प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत् ।
 सर्वमर्हति शुद्धात्मा प्रातःस्नायी जपादिकम् ॥
 गुणा दश स्नानपरस्य साधो रूपं च तेजश्च बलं च शौचम् ।
 आयुष्यमारोग्यमल्लेलुपत्त्रं दुःस्वप्नाश्च यशश्च मेधा ॥
 स्नानं नदीदेवघातहृदेषु च सरस्सु च ।
 पञ्चापिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिणि ॥ इति ।

परं संसाधेऽनुत्सृष्टजले मृत्पिण्डपञ्चकोद्धरणाभावे न स्नायादित्य-
 न्तिमार्थार्थः ।

मरीचिः—भूमिस्थमुद्धृतं वापि शीतमुष्णमथापि वा ।

गाङ्गं पयः पुनात्याशु पापमाभरणान्तिकम् ॥ इति ।

योगयाज्ञवल्क्यः—

भूमिस्थमुद्धृतात्पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम् ।

ततोऽपि सारसं पुण्यं तस्मान्नादेयमुच्यते ॥

पुण्यनोदानि ।

तीर्थतोयं ततः पुण्यं ततो गाङ्गं तु सर्वतः ॥ इति ।

गङ्गायाक्वयम्—

नन्दिनी नलिनी सीता मालवी च महापगा ।

विष्णुपादाप्रसंभूता गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥

भागीरथी भोगवती जाह्नवी त्रिजटेश्वरी ।

द्वादशैतानि नामानि यत्र यत्र जलाशये ।

स्नानोद्यतः सदा कुर्यात्तत्र तत्र वसाम्यहम् ॥ इति ।

देवलः—एकां नदीं समासाद्य नान्यां स्नाने नदीं स्मरेत् ।

मार्कण्डेयः—

संकल्पं च यया कुर्यात्स्नानदानप्रतादिके ॥ इति ।

यथा यथावदित्यर्थे इति भ्रातृचरणा ।

शङ्ख — “आपो अस्मान्” इति स्मृत्वा मास्कराभिमुख स्थित ।

स्नानसंस्कारम् ।

“इदं विष्णु” जपित्वा तु प्रतिश्रोतो निमज्जति ॥

अप्रवाहोदकस्नान विप्रपादाभिषेचनम् ।

आदित्याभिमुख कुर्यात्सध्यावन्दनमेव च ॥ इति ।

थाहवत्कथं—

“तत्त्वायामी” तिमन्त्रेण वारुणेन कटे स्थित ।

“तदुत्तम” मिति स्मृत्वा ह्यवर्तार्य जलाशये ।

आवाह्य परुण स्नानमाचरेद्विधिपूर्वकम् ॥ इति ।

चतुर्विंशतिमते—

स्नानमन्यैवतैर्मन्त्रैर्वारुणैश्च मृदा सह ।

कुर्याद्वाहतिभिर्वायं “यत्किंचेद्” मृचापि वा ॥

शौनक—कृत्वाऽऽचान्तो वारिमध्ये त्रि पठेद्दधर्मणम् । इति ।

योगयाज्ञवल्क्य—

य एव विस्तृतं प्रोक्त स्नानस्य विधिरुक्षम् ।

असामर्ध्यान् कुर्याच्चेत्तत्राय विधिरुच्यते ॥

स्नानमन्तर्जले चैव मार्जनाचमने तथा ।

जलाभिमन्त्रणं चैव तैर्मन्य परिकल्पनम् ॥

अचमर्पणसूचेन त्रिरावृत्तेन नित्यशः ।

स्नानाचरणमित्येतदुपदिष्टं महात्मभिः ॥ इति ।

चतुर्विंशतिमते—

स्नानादनन्तरं तावत्तर्पयेत्पितृदेवता ।

उत्तार्य पीठयेद्भस्त्रं सध्यायर्मं ततः परम् ॥ इति

तर्पणप्रकारमाह व्यास—

यज्ञोपवीती देवानां निर्वीती अपितर्पणे ।

प्राचीनावीती पित्र्ये तु स्वेन सीर्येण भावित ॥

उशना—द्वौ हस्तौ युग्मतं कृत्वा पूरयेदुदकाञ्जलिम् ।

गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये मर्तं क्षिपेत् ॥

मुमन्तु—आवासे निक्षिपेद्भारि जलस्थो दक्षिणामुखः ।

क्षिप्यात् स्नानमाकाश इक्षिणा दिक् तथैव च

प्रींसीञ्जलाञ्जलीं दद्यादुभैश्चनरं युधम् ॥

कार्णाजिनिः—

देवतानामृषीणां च जले दद्याज्जलाञ्जलीन् ।
असंस्कृतप्रमीतानां स्थले दद्याज्जलं पुनः ॥

वौधायनः—

जलाञ्जलित्रयं दद्याद्ये चान्ये संस्कृता भुवि ।
असंस्कृतप्रमीतानामेकमेव तटे क्षिपेत् ॥

तत्र मन्त्रः—

अग्निदग्धाद्वा ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम ।
भूमौ दत्तेन तोयेन तृप्ता यान्तु परां गतिम् ॥ इति ।

भगवान्—

स्नानाङ्गतर्पणं कृत्वा यक्ष्मणे जलमाहरेत् ।

यन्मन्त्रस्तु—

यन्मया दूषितं तोर्यं शारीरमलसंभवात् ।
तदोपपरिहारार्थं यक्ष्माणं तर्पयाम्यहम् ॥

नदीक्षमापनं कौर्मै—

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।
तत्क्षमस्वाखिलं देवि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥

सतो दर्भास्त्यजेत् ।

विकिरे पिण्डदाने च तर्पणे स्नानकर्मणि ।
आचान्तः सन्प्रशुषीत दर्भसंत्यजनं युधः ॥ इति स्मृतेः ।

विष्णुः— स्नातः शिरो नावधुनेन्नाङ्गेभ्यस्तोयमुद्धरेत् ।

न च पूर्वं धृतं वासो न च तैलमुपस्पृशेत् ।

स्नात्वा न धावयेदूर्ध्वं न मृज्याद्वाससा मुखम् ॥

मार्कण्डेयपुराणे—

अवमृज्याद्वा स्नातो गात्राण्यम्बरपाणिभिः ।

न च निर्धुनुयात्केशान्वासश्चैव न निर्धुनेत् ॥ इति ।

परिधेयवस्त्रे विशेषमाह देवलः—

स्वयं धौतेन कर्तव्याः क्रिया धर्म्या विपश्चिता ।

न तु नेजकधौतेन नाहतेन न कुत्रचिन् ॥ इति ।

नेजको रजकः । नाहतेनेति ममर्तं पदम् ।

भृगु — ब्राह्मणस्य सित वस्त्रं नृपते रक्तमुल्लङ्घनम् ।

पीतं वैश्यस्य शूद्रस्य नील मलवद्विष्यते ॥

विस्मृत्योऽनुत्तरीयश्च नम्रश्चावन् एव च ।

श्रीत स्मार्त तथा कर्म न नम्रश्चिन्तयेदपि ॥

नम्र स्यान्मलयद्वासा नम्र कौशेयकेवल ।

नम्रो द्विगुणरम्भ स्यान्नम्रो दग्धपटस्तथा ॥

नम्रश्च स्यूतवस्त्र स्यान्नम्रो ग्रथितरम्भर ।

नम्रश्च बहुरम्भ स्यान्नम्र कौपीनकेवल ॥

वापायनम् साक्षाच्च दश नम्रा प्रसीर्तिता ॥

कौशेयमात्रधारण एव नम्रता ननु परिवेषोत्तरीयवामोन्तरसाहिस्येऽपि । कौपीने च एवमुभयत्रापि केवलशरीरोपादानस्तरमा ॥

जातुरण्यं —

परिधानाद्बहि कृत्वा निरुद्धा ह्यासुरी मता ।

धर्मकर्मणि विद्वद्भिर्वर्जनीया प्रयत्नत ॥

प्रयोगपारिजाते—

ज्ञानं पृथ्वाऽऽर्द्रं वन्धु तु ऊर्ध्वमुत्तारयेद्विज ।

आर्द्रं रत्नमधस्तात्पुनः स्नानेन शुध्यति ॥

विष्णुपुगणे—

होमदेवार्चनाद्यासु त्रियासु पठने तथा ।

नैऋत्यं प्रवर्तेत द्विजो नाचमने जपे ॥

जानालि —

निर्णीहित धौतयश्च यदा शक्ये विनिर्नित्येन ।

नदासुर भवेत्कर्म पुनः स्नानं विशोधनम् ॥

दम्बं चतुर्गुणीकृत्य निर्णीडय सदा तथा ।

वामप्रकीर्णे निक्षिप्य स्थलस्थश्च द्विगचमेन ॥

पश्च त्रिगुणितं यस्तु निर्णीडयति मन्दधी ।

पृथा स्नानं भवेत्तस्य स्नातस्य देवमाप्नुभि ॥

गाभिर—

एकदशो न मुञ्चति न वर्धयति न च नृप ।

शातातपः—

सव्यादंसात्परिभ्रष्टं नाभिदेशे व्यवस्थितम् ।
एकवस्त्रं तु तद्विद्यार्थैवे पित्र्ये च कर्मणि ।

योगयाज्ञवल्क्यः—

अलाभे धौतवस्त्रस्य ज्ञाणक्षौमाविकानि च ।
कुतपं योगपट्टं च विवासास्तु न वै भवेत् ॥

उत्तरीयाभावे स्मृत्यन्तरे—

यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि ।
तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते ॥ इति ।

पारस्करगृह्ये तु—

‘एकं वेदासौ भवति तस्यैवोत्तरवर्गेण प्रेष्टादयेन्’

जाबालिः—

स्नात्वा निवस्य वस्त्रं च जह्ये शोष्ये मृदम्भसा ।
अपवित्रीकृते ते तु कौपीनक्षानवारिणा ॥ इति ।

एतद्यतिप्रह्वचारिवियपम् ।

गृह्यपरिशिष्टे—

अथ तीरमेत्य दक्षिणामुलः प्राचीनावीती

ये के चारमस्तुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः ।

ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ॥

इति वस्त्रं निष्पीडयोपवीती अप उपस्पृश्य परिधानीयमभ्युक्ष्य परि-
धायान्यवोत्तरीयमभ्युक्षितं प्राशृत्य द्विराचामेन्’ इति ।

गृह्यमनुः—

निष्पीड्य स्नानवस्त्रं तु पश्चात्संभ्यां समाचरेत् ।

अन्यथा पुरुते यस्तु स्नानं तस्याफलं भवेत् ॥

मनुः— मनुष्यतर्पणे चैव स्नानवस्त्रनिष्पीडने ।

निर्वीती च भवेद्विप्रसया मूत्रपुरीषयोः ॥ इति ।

पासोनिष्पीडने निर्वीतप्राचीनावीतयोर्विकल्पः इति केचिन् । गृह्यप-
रिशिष्टस्याश्वलायनपरब्राह्मणं प्राचीनावीतमिदं निर्वीतमिति तु
नृमिहः ।

विष्णु — ब्रह्मक्षत्रविशा चैव मन्त्रवत्तन्नामिष्यते ।

तूष्णीमेव हि शुद्रस्य स्त्रीणा च कुरुनन्दन ॥ इति ।

दक्ष — प्रातर्मध्याह्नयो स्नान वानप्रस्थगृहस्थयो ।

यतेस्त्रिपवण प्रोक्त सकृत्तु ब्रह्मचारिण ॥ इति ।

कात्यायन —

अल्पत्वाद्धोमकालस्य बहुत्वात्स्नानकर्मण ।

प्रातः सक्षेपत स्नान होमलोपो विगर्हित ॥ इति ।

गृहपरिशिष्टे—‘अथ स्नानविधि । तत्प्रातर्मध्याह्ने च कुर्यादेकत्र वा ।

प्रातरेव ब्रह्मचरी । द्विस्त्रिर्बानप्रस्थ । यतिस्त्रिषु सवनेषु ।

गृह्योक्त ।

तत्र प्रातः सहगोमयेन कुर्यात् । मृदा मध्यान्दिने । साय

शुद्धाभिरग्नि । न प्रातः स्नानात्प्राक् सध्यामुपासीत । प्रातस्तृप्त

गोमयमन्तरिक्षस्थ सगृह्य भूमिष्ठ चोपर्यधश्च सत्सज्य तीर्थमेतत् धौतपा-

णिपादमुख आचम्य सध्यास्तवदात्माभ्युक्षणादि च कृत्वा द्विराचम्य

सयत्प्राण कर्म सकृत्स्य गोमय वीक्षितमादाय सव्ये पाणौ कृत्वा

व्याहृतिभिरिधा विभज्य दक्षिणभागे प्रणवेन विष्णु निक्षिप्योत्तर तीर्थे

क्षिप्त्वा मध्यमम् “ मानस्तोके ” इत्युच्चाऽभिमन्य “ गन्धद्वारा ”

मिथुचा मूर्वादिसर्वाङ्गमालिष्य प्राञ्जलि —

हिरण्यगृह्ण वरुण प्रपद्ये तीर्थं मे देहि याचित ।

यन्मया भुक्तमसाधूना पापेभ्यश्च प्रतिग्रह ॥

यन्मे मनसा वाचा कर्मणा वा दुष्कृत कृतम् ।

तन्न इन्द्रो वरुणो बृहस्पतिः सविता च पुनन्तु माम् ।

इति द्वाभ्याम् ‘ अव ते हेळ ” इति द्वाभ्याम् “ प्रसन्नाजे बृहद

र्चा ” इतिसूक्तेन संप्राप्त्यर्थं “ याः प्रवतो निवत उदूत उदन्वती ”

इत्येतया तीर्थमुपशृश्यावगाह्य स्नातो द्विराचम्य मार्जयेत् ‘ दम्बयोऽयं

त्यध्वमि ’ इत्यष्टाभिः “ आपोहिष्ठा ” इति च नवाभिः अथ

तीर्थमङ्गुष्ठेन “ इमं मे गङ्गे ’ इति ऋचा त्रिः प्रदक्षिणमालोड्य प्र

काशपृष्ठमग्नोऽधमर्षणसूक्त त्रिरावृत्त्य निमज्ज्योन्मज्ज्यादित्यमवलोक्य

द्वादशकृत्व आप्लुत्य पाणिभ्यां शङ्खमुद्रया योनिमुद्रया चोदकमादाय

मूर्ध्नि भूमौ खे वाहोरुरसि चात्मानं गायत्र्याऽभिषिच्य “ त्वं नो

अग्नेवरुणस्य विद्वान् ” इति द्वाभ्याम् ‘ तरत्समन्दीषावति ” इति

च सूक्तेन पुनः स्नायात् । मूर्ध्नि चामिपिञ्चेत् “तद्विष्णोः परमं पदं”
 “त्वमग्ने रक्षाणो अंहसो” “यत्किञ्चेदं वरुण दैव्येजने” इत्येता जपेत् ।
 श्रोतोभिमुखः सरित्सु स्नायात् । अन्यत्राऽऽदित्याभिमुखः ।

अथ साक्षताभिरग्निः प्राङ्मुख उपवीती देवतीर्थेन व्याहृतिभि-
 र्यस्तसमस्ताभिर्ब्रह्मादीन्देवान्सकृत् सकृत्तर्पयित्वाऽथोदङ्मुखो निर्वती
 सयवाभिरग्निः प्राजापत्येन तीर्थेन ऋषीन्[तांभि]र्याहृतिभिर्द्विर्द्विस्तर्पयि-
 त्वाऽथ दक्षिणामुखः प्रार्थानावीती पितृतीर्थेन सतिलाभिरग्निर्व्याहृतिभि-
 रेव सोमः पितृमान् यमोऽद्विरस्वान् अग्निष्वात्ताः कव्यवाहन इत्यादीन्
 त्रिस्त्रिस्तर्पयेत्स्नानाङ्गतर्पणमिति ।

शौनकः—“प्रसंग्राजेवृह” त्सूक्तमष्टर्चं वारुणं जपेत् ।

“समुद्रादूर्ध्वं” रित्येषां सूक्तमेकादशर्चकम् ॥

शौनकोक्तम् । “आपो अस्मान्मातरः” इत्यृचं च जपेन्नरः ।

अवगाह्य निमज्ज्याथ द्विराचम्याभिपेचयेत् ॥

“अम्ययोऽय” मृचोऽष्टौ च “आपोहिष्ठा”ऽऽदयो नव ।

अग्निः स्नात्तोदके मग्नस्त्रिः पठेदधमर्पणम् ॥

कुर्याद्वादशभिः स्नानं सर्वपापप्रणाशनम् ।

धन्यं यशस्यमायुष्यमारोग्यं पुष्टिर्वर्धनम् ॥ इति ।

॥ इति नित्यस्नानम् ॥

अथ काम्यस्नानम् ।

पुलस्त्यः—पुण्ये च जन्मनक्षत्रे व्यतीपाते च वैधृतौ ।

अमायां च नदीस्नानं पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥

चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां च स्नायाच्छिवसंनिधौ ।

न प्रेतत्वमवाप्नोति गङ्गायां च विशेषतः ॥

पुलस्त्योक्तम् । शिवलिङ्गसमीपे तु मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता ।

दशजन्माघहा गङ्गा तेन पापहरा स्मृता ॥ इति ।

विष्णुः—सूर्यग्रहणतुल्या तु शुद्धा माघस्य सप्तमी ।

अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम् ।

पुनर्यसुबोधोपेता चैत्रमाससिताष्टमी ।

स्रोतस्सु विविक्त्वात्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥

मत्स्यपुराणे—

मासस्योक्तम् । आपादादिचतुर्मासं प्रातःस्नायी भवेन्नरः ।

विप्रेभ्यो भोजनं दत्त्वा कार्तिस्र्यां गोप्रदो भवेत् ॥

स वैष्णवं पदं याति विष्णुजनमिति स्मृतम् ॥ इति ।

आपादादीत्यतद्रुणसंविज्ञानो वटुर्ग्रीहिः ।

आदित्यपुराणे—

आदित्यपुरा- कार्तिकं सरुलं मासं नित्यस्नायी जितेन्द्रियः ।
शोक्तम् । जपन्हविष्यभुक् स्नानात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

तुलामरुमेपेषु प्रातःस्नायी सदा भवेत् ।

हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम् ॥ इति ।

मार्कण्डेयः—

मार्कण्डेयोक्तम् । श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्वीतामलकैर्नरः ।

सप्तर्षी नवमी चैव पर्वकालं च वर्जयेत् ॥ इति ।

विष्णुः— बालाश्च तरुणा वृद्धनरनारीनपुंसकाः ।

स्नात्वा माघे शुभे तीर्थे प्राप्नुवन्तीप्सितं फलम् ॥

माघमास्युपमि स्नात्वा विष्णुलोकं स गच्छति ॥

चन्द्रिकायाम्—

दर्श च पौर्णमासं वा प्रारभ्य स्नानमाचरेत् ।

पुण्यान्यहानि त्रिंशत्सु मरुस्थे दिवाकरे ॥

अप्राशृतशरीरस्तु यः कष्टं स्नानमाचरेत् ।

पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः ॥

अनभ्यङ्गी द्विजो मासं सर्वमेनं नयेद्रुही ।

ततः स्नानावसाने तु भोग्यं द्रव्यं सुसंस्कृतम् ॥

भोजयेद्द्विजदाम्पत्यं भूपयेच्च सुभूपणैः ।

दम्पत्योर्वाससी सूक्ष्मे सप्तवान्यसमन्विते ।

त्रिंशच्च मोदका देयाः शर्करातिलमिश्रिताः ॥

अथाश्वत्थच्छायाजलस्नानम् ।

प्रयोगपारिजाते—

अश्वत्थीयोदके स्नायाद्भजच्छायेति सोच्यते ।
पारिजानोक्तम् । अमागुरुसमायोगः सूर्यपर्वशताधिकः ॥ इति ।
आदित्यपुराणे—

आदिष्वपुत्र- गुरुवारेऽप्यमायां च अश्वत्थछायावारिणा ।
नोक्तम् । स्नानं प्रयागस्नानेन समं पातकमाशनम् ॥
प्रार्थनामन्त्रः—

जीयो बृहस्पतिः सौरिराचार्यो गुरुरङ्गिराः ।
पाचस्पतिर्देवमन्त्री शुभं पुर्यात्सदा मम ॥
एतैर्नामभिरष्टाभिः प्रार्थयेत्तर्पयेत्तथा ॥

॥ इत्यश्वत्थच्छायास्नानम् ॥

अथ समुद्रस्नानम् ।

भरद्वाजः—

पक्षोपवासफलदा महानद्यः समुद्रगाः ।
मासोपवासफलदः सकृत्स्नातो महोदधिः ॥ इति ।

आचार्यः—

समुद्रस्नान- समुद्रे पर्वसु स्नायादमायां तु विशेषतः ।
कालः । पापैर्विमुच्यते सर्वैरमान्ते स्नानमाचरत् ॥
भृगौ भौमदिने स्नानं समुद्रे च विवर्जयेत् ।
ग्रहणे रविवारे च पुत्रेप्सुर्नैतदाचरेत् ॥

॥ इति समुद्रस्नानम् ॥

अथ नैमित्तिकस्नानम् ।

*मनुः— दिवाकीर्तिमुदक्या च पतितं सूतिकां तथा ।
अष्टपद्याः । शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुध्यति ॥ इति ।
दिवाकीर्तिश्चण्डालः ।
संवर्तः— तत्स्पृष्टिनं स्पृशेद्यस्तु स्नानं तस्य विधीयते ।
ऊर्ध्वमाचमनं प्रोक्तं द्रव्याणां प्रोक्षणं तथा ॥ इति ।

तदबुद्धिपूर्वस्पर्शं ।

तदबुद्धिपूर्वसस्पृशं द्वयो स्नान विधीयते ।

इति सप्रहोकेरिति भावव । बुद्धिपूर्वके तु तृतीयस्यापि स्नानम् ।

उपस्पृशेद्यतुर्थस्तु तदूर्ध्वं प्रोक्षणं स्मृतम् ।

इति मेरीच्युक्ते ।

काम्नाद्यचेतनान्तरितस्पर्शं तु कौमे—

घण्टालसूतकिशौ सस्पृष्ट सस्पृशेद्यदि ।

प्रमादात्तत आचम्य जपं बुर्वात्समाहित ॥

तस्पृष्टस्पर्शिनं स्पृष्ट्वा बुद्धिपूर्वं द्विजोत्तम ।

आचमेत्तु विशुद्धपर्यं ग्राह्यं देव पितामह ॥ इति ।

प्रचेता — साक्षात्स्पर्शं तु यत्प्रोक्तं तद्वत्त्वान्तरितेऽपि च । इति ।

चतुर्थिगतिमते—

चित्तिं च चित्तिकाष्ठं च यूपं चण्डालमेव च ।

स्पृष्ट्वा देवलकं चैव सचैलो जलमाविशेत् ॥

बौद्धापाशुपताश्चैर्नोहोकायतिककापिलान् ।

विरुर्मस्थान्द्विजान्स्पृष्ट्वा सेवासा जलमाविशेत् ॥

कापालिकास्तु सस्पृश्य प्राणायामोऽधिको मतः ॥ इति ।

कापिला साख्या इति केचित् । लोकायतिककापिलानिति कर्म
धारयाहोकायतिकैकदेशिन एव कापिला इति हेमाद्रिः ।

स्मृत्यन्तरे—

देवार्चनपरो विप्रो वित्तार्थो बत्सरत्रयम् ।

देवलकप्रक्षालनम् ।

स वै देवलको नाम हव्यकव्येषु गार्हितः ॥ इति ।

स्मृतिरत्नावल्याम्—

शिवं सूर्यं तथा चन्द्रं दुर्गादीरुपदेवता ।

योऽर्चयेत्पणपूर्वं ॥ सद्यः पतति मानवः ॥

देवसनिधौ पशुबन्धे च देवलयूपस्पर्शं न स्नानम् ।

न स्नायादेवलं यूपं देवस्थाने च बन्धने ।

अस्पृष्टपापपादः ।

अन्यदा तावुभौ स्पृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत् ।

इति व्यासोक्तेः ।

व्यासः—महानिशा तु विज्ञेया मध्ययामद्वयं निशि ।

स्नाने निषिद्ध- तस्यां स्नानं न कुर्वीत काम्यनैमित्तिकादृते ।
यात् । प्रदोषे पश्चिमे यामे दिनवत्स्नानमाचरेत् ॥ इति ।

मध्ययामयोस्तु विशेषमाहात्रिः—

रात्रौ स्नानं यदि मध्येऽप्यत्रिं समाचरेत् ।

स्वर्णाङ्गुलिकरो विप्रो वह्निना वा विना चरेत् ॥

पाराशरः—

अस्पृश्यस्पर्शने जाते अश्रुपाते क्षुरे भगे ।

स्नानं नैमित्तिकं कार्यं दैवपित्र्यविवर्जितम् ॥ इति ।

दैवादितर्पणरहितमित्यर्थः ।

स एव—तूष्णीमेवावगाहेत् यदा स्यादशुचिर्नरः ।

भग्नचेः स्नाने सं- आचम्य विधिवत्पश्चात्प्रयतः स्नानमाचरेत् ॥ इति ।
कृष्णादिनिषेधः ।

बृद्धमनुः—

निषिद्धोष्णज- मृते जन्मनि संक्रान्तौ आर्द्धजन्मदिने तथा ।
कलानम् । अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥ इति ।

गार्ग्यः—कुर्यान्नैमित्तिकस्नानं शीताग्निः काम्यमेव च ।

नित्यं यादृच्छिकं चैव यथाकृचि समाचरेत् ॥ इति ।

॥ इति नैमित्तिकस्नानम् ॥

अथ मलापकर्पस्नानम् ।

मनुः—पश्चादौ च रवौ पष्ठ्यां रिक्तायां च तथा त्रिथौ ।

तैलेनाभ्यज्यमानस्तु धनायुभ्यो विहीयते ॥

गर्गः—पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां रविसंक्रमे ।

अभ्यङ्गे कर्पा- द्वादश्यां सप्तमीपष्ठयोस्तैलस्पर्शं विवर्जयेत् ॥
रितयः । न च कुर्यात्तृतीयायां त्रयोदश्यां त्रिथौ तथा ।

नवम्यां च दशम्यां च क्षेममिच्छन् हि पण्डितः ॥ इति

माधवीये—

वारविशेषे- संतापः कान्तिरूपयुर्धनं निर्धनता तथा ।
णाम्यङ्गफलम् । अनारोग्यं सर्वकामा अभ्यङ्गाद्वास्करादिषु ॥

प्रचेता — सार्षप गन्धतैल च यत्तैल पुष्पमासितम् ।

अन्यद्रव्ययुत तैल न दुष्यति कदाचन ॥ इति ।

याज्ञवल्क्य —

वृथा तूष्णोदकस्नानं वृथा ज्ञाप्यमवैदिकम् ।

वृथा त्वश्रोत्रिये दानं वृथा भुक्तमसाक्षिकम् ॥ इति ।

यम — नित्यं नैमित्तिकं चैव क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ।

तीर्थाभावे तु कर्तव्यमुष्णोदकपरोदकैः ॥

आदित्यकिरणैः पूतं पुनः पूतं च वह्निना ।

आभ्रातमातुरस्नाने न प्रशस्तं दृढाङ्गिनाम् ॥ इति ।

आपः स्वभावतो मेघ्या किं पुनर्बहिर्वापिताः ।

अतः सन्तः प्रशसन्ति स्नानमुष्णेन वारिणा ॥

इति याज्ञवल्कीयमप्यातुरपरम् ।

वृद्धमनु —

सक्रान्त्या रविवारे च सप्तम्या राहुदर्शने ।

आरोग्यपुत्रमित्रार्थं न स्नायादुष्णवारिणा ॥ इति ।

॥ इति महापकषंजानम् ॥

अथ काशीयानां मध्याह्नस्नाने विशेषस्तत्सूत्रे—

सकल्पं सूत्रपठनं मार्जनं चाघमर्पणम् ।

देवादितर्पणं चैव पश्चाद् स्नानमुच्यते ॥

अथातो नित्यस्नानम् । नद्यादौ मृद्वीमयकुञ्जतिलमुमनस आहृत्योद-
कान्तं गत्वा शुचौ देशे स्थाप्य प्रक्षाल्य पाणिपार्श्वं कुशोपग्रहो बद्धशिरसो
यशोपवीत्याचम्य “उहो ह्रीं” इति सोयमामन्त्र्य आवर्तयेत् “ये ते शतः”
मिति ‘सुमित्रियान’ इत्यपोऽञ्जलिनादाय “दुर्मित्रिया” इति द्वेष्ट्य प्रति
निषिञ्चेत् । कटिं वस्त्यूरुजङ्घे चरणौ करौ मृदा त्रिभिः प्राक्षाल्याचम्य
नमस्योदकमालमेदङ्गानि मृदा “इदं विष्णुः” इति सूर्याभिमुखो मञ्जेत्
“आपो अस्मान्” इति स्नात्वा “उदादिभ्यः” इति निमज्ज्यान्मज्ज्याचम्य
गोमयेन विलिम्पन् “मानस्तोके” इति ततोऽभिषिञ्चेत् “इमं मे वरुणः”
इति चतसृभिः “मापः” “उदुत्तमः” “मुञ्चन्तु” “अवमृथे” त्यते चैव निम-
ज्ज्यान्मज्ज्याचम्य द्भैः पावयेत् “आपोहिष्ठा” इति तिसृभिः “इद-

मापो ॥ “हविष्मतीः” “देवीरापः” इति द्वाभ्याम् “अपो देवा”
 “द्रुपदादिव” “शं नो देवीः” “अपा०रसं” “अपोदेवीः” “पुनंतु
 मा” इतिनवभिः “चित्पतिमा” इत्योङ्कारेण व्याहृतिभिर्गायत्र्या
 चादावन्ते चान्तर्जलेऽधमर्षणं त्रिरावर्तयेन् “द्रुपदांवा” “आयंगौः”
 इत्यृचं प्राणायामं वा सशिरसमोमिति वा विष्णोर्वा स्मरणम् । कार्त्तया-
 नामेतत्सूत्रात्सूर्याभिमुखतैव प्रवाहाभिमुखता त्वन्येषामिति कर्कः ।
 सशिरसमित्यनेनाऽशिरस्कोऽपि प्राणायामोऽस्तीति गम्यत इति हरिहरः ।

अथ मध्याह्नसंध्यायां विशेषः—उत्तीर्य धौतवाससी परिधाय मृदोरुकरौ
 प्रक्षाल्याचम्य त्रिरायम्यासून्पुष्पाप्यम्युमिश्राप्यूर्ध्वं प्रक्षिप्योर्ध्वंवाहुः सूर्यमु-
 र्धाक्षन् “उदयम्” “उदुत्यं” “चित्रं” “तक्षन्” “गायत्र्या” च यथाशक्ति
 “विभ्राह्” इत्यनुवाकपुरुषसूक्तशिवसंकल्पमण्डलप्राक्षणैरुपस्थाय प्रद-
 क्षिणीकृत्य नमस्तुत्योपविशेद्भेषु । दर्भपाणिः स्वाध्यायं च यथाशक्त्या-
 दावारभ्य वेदम् । ऊर्ककरश्चालनं च शुद्धगर्थं नानन्तरप्रियमाणसंध्यायन्द-
 नाङ्गं प्राणायामात्प्रागाचमनमर्षाति हरिहरः । ऊर्ध्वं सूर्याभिमुखं प्रक्षेपश्च
 प्रणवत्रयादृतिपूर्विकया गायत्र्येत्यपि स एव । शिवसंकल्प इति मन्त्रा
 “यज्ञाप्रत” इत्याद्याः षट् । मण्डलप्राक्षणम् “यदेतन्मण्डलं तपति”
 इत्यादि ।

ततस्तर्पयेद्ब्रह्माणं पूर्वं विष्णुं रुद्रं प्रजापतिं देवाञ्छन्दांसि वेदानृषीन्
 पुराणाचार्यान् गन्धर्वानितराचार्यान्संवत्सरं च सावयथं देवैरप्सरसो
 देवानुगात्रागान्सागरान्पर्वतान् सरितो मनुष्यान्यक्षान्क्षौंसि पिशाचा-
 न्मुषर्गान् भूतानि पशून्वनस्पतीरोषधीर्भूतमामं चतुर्विधं तृप्यतामित्यो-
 कागपूर्वकम् ।

ततो निर्वाती मनुष्यान्—

सनकं च सनन्दं च तृतीयं च सनातनम् ।

कपिलं चामुनिं चैव वोढुं पञ्चजिन्यं तथा ॥

ततोऽपमर्त्यं तिलमिश्रम्—

कथ्यवाहनन्दःशोभं यमपर्यमगममिथ्यात्तान्सोमपान्यर्हपदे । यमांभैके

गङ्गेकृत्य तिलमिर्गङ्गांर्षीर्षीन्दशाप्रलज्जन्ति ।

यावद्भावकृतं पापं सत्प्राणादेव नश्यति ॥

भायस्विगृहोऽयेनानन्यांभेतः । “उदीग्ता” “आद्गिरम”

“आयन्तु न ” “ ऊर्ज ” “ पितृभ्यो ” “ ये चेह ” मधुवाता ॥ इ
 तृचं जपन्प्रसिञ्चेत्तृप्यध्वमिति च त्रि “ नमो व ” इत्युक्त्वा माताम-
 हाना चैवम् । गुरुशिष्यार्त्विग्ज्ञातिबान्धवा न तर्पिता देहाद्रुधिर पिव-
 न्ति । अत्र यद्यपि ब्रह्मादिद्वितीयान्तेषु तर्पयामीति वाक्यशेषो युक्तस्त-
 थापि श्रुतत्वात्तृप्यतामित्येवानुपज्यते । तेन ब्रह्माद्या प्रथमान्ततयोषार्या
 ॐ ब्रह्मा तृप्यतामित्येकोनविंशतिवाक्यानि । सावयवमिति सक्त्सर
 विशेषणम् । एवमेव सनकादिसप्तसु । कव्यवाद् चासावनलश्रेत्येकैव
 देवतेति कर्कहरिहरौ । देवताद्वयमित्यन्ये । यमादिषु चतुर्दशसु यमाय
 नमस्तर्पयामीत्यादि प्रयोग इति हरिहर । अन्यान्पित्रादीन् । इतरो
 मृतपितृक “ उदीरता ” मिति पण्मन्त्रान् “ मधुवाता ” इति तृच च
 जपन्जलीन्क्षिपेत् । तृप्यध्वमिति च प्रत्येकमुक्त्वा क्षिपेत् “ नमो व
 पितर ” इत्यादीन्पण्मन्त्रानुक्त्वाऽनन्तर मातामहादीन्तर्पयेत् ।

वासो निष्पीड्याचम्य ब्राह्मणैव रौद्र-सावित्र-मैत्रावरुणैस्तद्विद्धैर-
 र्चयेत् “ अष्टभ्रमस्य ” “ इहस ” इत्युपस्थाय सूर्यं प्रदक्षिणीकृत्य
 नमस्कृत्य च दिशश्च देवताश्च उपविश्य ब्रह्मामिष्टयिष्योपधी वाग्वाच-
 स्पति विष्णुमरुद्भृगोऽपापतये वरुणाय नम इति सर्वत्र । “ सर्वर्चसे ” इति
 मुष्टं विष्टुष्टे “ देवागातुविद ” इति विसर्जयेत् । एष स्नानविधि इति ।

अथ गौणस्नानानि ।

चूडमनु—

असामर्थ्यच्छरीरस्य फालशैस्त्याद्यपेक्षया ।

मन्त्रस्नानादिक प्रोक्त मुनिभि शौनकादिभि ॥ इति ।

चतुर्विंशतिमते—

आग्नेय भस्मना स्नानमवगाहस्तु वारणम् ॥

आपोहिष्ठेति च ब्राह्म वायव्य गजसा गवाम् ॥

स्नानप्रतिनिधयः ।

यत्तु सातपथ्ये तु कृत्स्नान दिव्यमुच्यते ।

स्नानान्येतानि चापन्सु व्याधितस्योदक विना ॥ इति ।

प्रयोगपारिजाते—

आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्र मृदालम्भस्तु पार्थिवम् ।

आग्नेय भस्मना स्नान वायव्य गोरज स्मृतम् ॥

यत्तु सातपर्वर्षि हि स्नानं तद्विषयमुच्यते ।

अवगाहो वारुणं स्यान्मानसं विष्णुचिन्तनम् ॥

चतुर्विंशतिमते—अशीतिमते

अशक्तावशिरस्कं यत्स्नानं मन्त्रविधानतः ।

आर्द्रेण वाससा चाङ्गमार्जनं कापिलं स्मृतम् ॥

अथ सारस्वतम्—

विद्वत्सरस्वतीप्राप्तं स्नानं सारस्वतं विदुः ।

विद्वत्सरस्वती शुद्धोऽसीत्यादिवचः ।

अथ गायत्रम्—

गायत्र्या जलमादाय दशकृत्वोऽभिमन्त्र्य च ।

शिरश्चाङ्गानि सर्वाणि प्रोक्षयेत्तेन वारिणा ॥

स्नानं गायत्रकं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ।

अशक्तानां तु जन्तूनां गुरोः पादोदकं शुभम् ॥

तथा— विप्रपादाद्विष्णुपादात्तलस्याः संमृतं जलम् ।

प्रोक्षणात्स्नानमाप्नोति ध्यानस्नानं विशिष्यते ॥

चतुर्भुजं महाकायं शङ्खचक्रादाधरम् ।

ध्यायीत मनसा विष्णुं स्नानं मानसमीरितम् ॥

एतैस्तु स्नानानुकल्पैर्जपसंध्यावन्दनवेदाध्ययनेष्वेवाधिकारो न आद्व-
वेधपूजादौ ।

प्रातः स्नातुमशक्तस्तु रोगाद्यैर्वा भयाच्च वा ।

गौणस्नानपूतस्य पूर्ववत् परिष्वज्य गौणस्नानेन शुध्यति ॥
कर्मविशेषेऽर्हत्स्नान-
होतव्यम् ।

॥ कर्मस्वनर्हः स्याच्छ्राद्धदेवार्चनादिषु ।

अपेत्संध्यां तथा वेदान्तोऽधीयीत यथाविधि ॥

ऽत्याचार्यस्मृतेः । इति गौणस्नानानि ।

॥ इति स्नानविधिः ॥

अथ तिलकम् ।

ब्रह्मपुराणे—

पर्वताग्रे नदीतीरे रामश्रेत्रे विशेषतः ।

मिन्धुतीरे च वल्मीके तुलसीमूलमाश्रिताः ॥

मृद एतास्तु संपाद्या वर्जयेदन्यमृत्तिकाः ॥

द्वारवत्युद्गवाद्गोपीचन्दनादूर्ध्वपुण्ड्रकम् ॥

तिन्कयोव्यमृ- कारयेन्नित्यमेवं हि पापं हन्ति दिने दिने ॥
तिका ।

जाह्नवीतीरसंभूता मृदं मूर्ध्ना विभर्ति यः ।

विभर्ति रूपं सोऽर्कस्य तमोनाशाय केवलम् ॥

इयामं शान्तिहरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं भवेत् ।

श्रीकरं पीतमित्याहुर्वैष्णवं श्वेतमुच्यते ॥

अङ्गुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तो मध्यमाऽऽयुः करी भवेत् ।

अनामिकाऽन्नदा नित्यं मुक्तिदा च प्रदेशिनी ।

एनैरङ्गुलिभेदैस्तु कारयेन्न नरैः स्पृशेत् ।

तिलकं प्रनम्य स्मृतिचन्द्रिकायां ब्रह्माण्डे—

ललाटे केशनं विद्याभारायणमथोदरे ।

माधनं हृदि विन्यस्य गोविन्दं कण्ठरूपके ॥

उदरे दक्षिणे पार्श्वे विष्णुरित्याभिधीयते ।

शिवस्मरणमन्त्राः ।

तत्पार्श्वे बाहुमध्ये तु विन्यसेन्मधुसूदनम् ॥

त्रिष्विज्रमं कर्णदेशे वामपुष्पौ तु वामनम् ।

श्रीधरं बाहुके वामे हृषीकेशं तु दक्षिणे ॥

पृष्ठदेशे पद्मनाभं वकुहामोदरं स्मरेत् ।

द्वादशैतानि नामानि वासुदेवेति मूर्धनि ।

संकर्षणादिभिः कृष्णे शृष्टे चेत्केशनादिभिः ॥ इति ।

शौनकः—

उर्ध्वं पुण्ड्रं शिवस्यैव विष्णोः कुर्युश्च वा युवाः ।

मूर्ध्नि मूलेन मन्त्रेण शेषं द्वादशनामभिः ॥

स्थानेष्वेव द्विजः कुर्यात् नमोन्तैः प्रणवेन च ॥ इति । —

स्थानविशेषाकारविशेषः स्मर्यते—

निटिले बाहुवैधेव दण्डवत्कर्णपद्मे ।

हृदये कमलाकारमुदरे दीपवास्तिरेत् ॥

पुण्ड्रानागविशेषः ।

वेणुपत्रसमाकारं बाहुमध्ये समालिखेत् ।

अथ पृष्ठे सन्वदशे लिखेज्जम्बुफलाकृति ॥

निटिले भाले । प्रमाणं तु—

दशाङ्गुलं प्रमाणं तु ह्युत्तमोत्तममुच्यते ।

नवाङ्गुलं मध्यमं स्यादष्टाङ्गुलमतः परम् ।

सप्तपञ्चभिः पुण्ड्रं मध्यमं त्रिविधं स्मृतम् ।

चतुस्त्रिंशद्भुजैः पुण्ड्रं कनिष्ठं त्रिविधं भवेत् ॥

उर्ध्वं पुण्ड्रमृजुं सौम्यं कनिष्ठाङ्गुलिबत्स्मृम् ।

नासादिकेशपर्यन्तं प्रयत्नाद्धारयेद्भिजः ॥

सत्यघतः—

मङ्गको धारयेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रं विना तु तत् ।

यत्कर्म धारयेन्नित्यं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ इति ।

प्रयोगपारिजाते संग्रहे—

उर्ध्वं पुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा मध्ये शून्यं प्रधारयेत् ।

शृणु पण्डुल तन्मध्ये उमयाऽहं श्रिया हरिः ॥ इति ।

तत्रैव सारणीये शङ्खः—

शङ्खचक्रायङ्गुलं च तुलसीदलभक्षणम् ।

यः कुर्यान्नित्यतं भक्त्या स याति परमां गतिम् ॥

नान्यं देवं नमस्कुर्यान्नान्यं देवं निरीक्षयेत् ।

चक्राङ्कितः सदा तिष्ठेन्मङ्गलः पाण्डुनन्दन ॥ इति ।

शङ्खादिवचांसि वैदिकमार्गभ्रष्टपराणि ।

वेदमार्गानुयायि- शिवकेशवयोरङ्गान्शूलचक्रादिकान्भिजः ।
नामभ्रानुपेयः । न धारयेत् मतिमान्वैदिके वर्त्मनि स्थितः ॥

इत्याश्वलायनोक्तेः ।

प्रज्ञाण्डे—मृत्तिका चन्दनं चैव भस्म तोयं चतुर्थकम् ।

एभिर्द्रव्यैर्यथाकालमूर्ध्वं पुण्ड्रं सदा भवेत् ॥

कालविशेषेति- स्नात्वा पुण्ड्रं मृदा कुर्यादुत्वा चैव तु भस्मना ।
लकविशेषः । देवानभ्यर्च्य गन्धेन सर्वपापापनुत्तये ।

उत्तेजः तिलकं कुर्यात्तलान्तः कर्मसिद्धये ॥ इति ।

संग्रहे— न कदाचिन्मृदा तिर्यक् न्यसेदूर्ध्वं न भस्मयेत् ।

अत्र भस्मनोर्ध्वपुण्ड्रस्य विहितप्रतिपिद्धत्वाद्विकल्पः ।

स च वृद्धाचारवो व्यवस्थित इति नृसिंहः ।

कात्यायनः—

आद्धे यद्धे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने ।
धृतत्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः ॥

भविष्यपुराणे—

सत्यं शौचं जपो होमस्तीर्थ देवादिपूजनम् ।
तस्य व्यर्थमिदं सर्वं यस्त्रिपुण्ड्रं न धारयेत् ॥ इति ।

भस्मधारणप्रदेशः स्मृतिरत्नावल्याम्—

भस्मधारणस्था- ललाटे हृदये नामौ गलेऽपि बाहुसंधिषु ।
गान्धि । पृष्ठदेशे शिरस्येवं स्थानेष्वेतेषु धारयेत् ॥

भस्मधारणे मन्त्रानाह पुलस्त्यः—

॥ अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः शुद्धं भस्माभिमन्त्रितम् ।

शिवमन्त्रेण तद्वार्यं मन्त्रेणाष्टाक्षरेण वा ॥

गायत्र्या वाय देवर्षे मन्त्रेण प्रणवेण वा ।

भस्मधारणविधि । करोति शिवमन्त्रेण यस्त्रिपुण्ड्रं द्विजोत्तमः ॥

ज्यक्षः शूलधरः सौम्यः शिवलोके महीयते ॥

अष्टाक्षरेण मन्त्रेण यः करोति त्रिपुण्ड्रकम् ।

विष्णोः पदमवाप्नोति नान्यथा श्रुतिषोदितम् ॥

सौरं पदमवाप्नोति गायत्र्या मुनिसत्तम ।

प्राप्नोति ब्रह्मणो रूपं प्रणवेन न संशयः ॥ इति ।

अग्निरित्यादिमन्त्रास्त्वायर्वणस्य पिप्पलाद ऋषिः । गायत्री छन्दः ।
रुद्रो देवता । भस्मशुद्धौ विनियोगः । अग्निरिति भस्म । वायुरिति
भस्म । जलमिति भस्म । स्थलमिति भस्म । व्योमेति भस्म । सर्वं
हवा इदं भस्म ।

प्रयोगपारिजाते—

धार्यं भस्म त्रिपुण्ड्रं तु गृहिणा जलसंयुतम् ।

सर्वकालं भरेत्सीषां यतीनां जलवर्जितम् ॥

भस्मधारणे वा- वानप्रस्थस्य कन्यानां दीक्षाहीननृणां तथा ।
एकविंशेऽपि सत्र- मध्याह्नाद्याकालैर्युक्तं परतो जलवर्जितम् ॥
निर्वाणेषु । ऋष्याह्निष्वेतेषु खदक्षिणकरस्य तु ।

त्रिपुण्ड्रं धारयेद्विद्वान् सर्वकल्मषनाशनम् ॥ इति ।

स्मृतिरत्नावल्याम्—

मध्यमानामिकाङ्क्षैरनुलोमविलोमतः ।

अतिस्वल्पमनायुष्यमतिदीर्घं तपःक्षयः ॥

वर्णविशेषे पुण्ड्र-
प्रमाणविशेषा । नेत्रयुग्मप्रमाणेन त्रिपुण्ड्रं धारयेद्विजः ।

पङ्क्तुलप्रमाणेन ब्राह्मणानां त्रिपुण्ड्रकम् ॥

नृपाणां चतुरङ्गुल्यं वैज्यानां द्व्यङ्गुलं तथा ।

शूद्राणामथ सर्वेषामेकाङ्गुल्यं त्रिपुण्ड्रकम् ॥ इति ।

तत्रैव— त्रिपुण्ड्रं ब्राह्मणो विद्वान्मनसाऽपि न लङ्घयेत् ।

स्मृत्या विधीयते यस्मात्तत्त्यागी पतितो भवेत् ॥

त्रिपुण्ड्रेण विना येन विप्रेण यदनुष्ठितम् ।

न तद्ध्यानं न तज्ज्ञानं न तद्दानं अपो न सः ॥

संप्रहे— ये भस्मधारिणं दृष्ट्वा वाचा निन्दन्ति मानवाः ।

तेषां शस्त्रेण संभूतिरनुमेया विपश्चिता ॥ इति ।

[नारदः— मद्यं पीत्वा गुरुदाराश्च गत्वा

स्वर्णस्तेयं ब्रह्महत्या च कृत्वा ।

भस्मच्छन्नो भस्मशय्याशयानो

रुद्रं ध्यायन्मुच्यते पातकेभ्यः ॥ इति ।]

॥ इति तिलकम् ॥

अथ संध्यावन्दनम् ।

तस्य च नित्यतामाह मरीचिः—

संध्या येन न विज्ञाता संध्या येनानुपासिता ।

जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते ॥ इति ।

शुचित्वसपादनेन कर्माङ्गतामाह दक्षः—

संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।

यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभागभवेत् ॥ इति ।

अङ्गता च प्रातः संध्याया एवेति वेचित् । युक्तं तु वचनान्तरप्राप्तत्त-
त्संध्याकालोत्तरभावितात्कर्माङ्गता संध्यात्रयस्याप्यविशेषात् ।

अत्रि—संध्यात्रयं तु कर्तव्यं द्विजेनात्मविदा सदा । इति ।

अत्र सध्यापदं सध्यासु चर्तव्यत्वात्मधिरूपकालप्राप्तेस्तत्प्रत्यतदा
कर्मनाम दर्शपूर्णमासादिभ्यः । तच्च कर्मोपासनाख्य ध्यानम् । तदेव च
प्रधानम्—

सध्यामुपासते ये तु मृतत आसिनव्रताः ।

विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम् ।

इति फल्गुसम्भवात् । अतो ग्णेऽर्जुनादिभिर्द्वेष्ट्वसामर्थ्यात्सूर्योपासन-
मात्र प्रधानमकारि इति ।

भारते— ते तथैव महागज दक्षिता गणमूर्धनि ।

सध्यागत सहस्राशुमादित्यमुपतस्थिरे ॥ [इति ।

तथाच] तैत्तिरीये—“ उद्यन्ममस्त यन्तमादित्यमभिध्यायन्तुर्ङ्ग्रा-
हणो विद्वान्सकल भद्रमश्नुनेऽसायादित्यो ब्रह्मेति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति
य एव वेद ” इति ।

कुर्ङ्गायत्रीजप भद्रमीप्सित फल ब्रह्म वेत्यादि । अज्ञानार्जयिता
प्राप्तोऽनेन ध्यानेन ब्रह्माप्नोतीत्यर्थः ।

व्यास — सध्येति सूर्यग प्रश्न सधानान्निर्भागन ।

ब्रह्माद्यै सकलैर्भूतैः सत्त्वान्तैः सच्चिदात्मनः ॥

तस्य दासोऽहमस्मीति सोऽहमस्माति या मति ।

भवेदुपासकस्यति ह्येव बहुविदो विट् ॥

आश्रित्यत्यैव कालभेदेन नामान्याह स एव—

गायत्रीनाम पूर्वाह्ने सावित्री मध्यमे ऋते ।

सरस्वती च सायाह्ने सैव मध्याह्ने त्रिषु मृता ॥ इति ।

सधिरालोपास्यत्वात्सध्येति माधुर । सम्यगध्येयत्वात्सध्येति नृसिंह ।

उभयेधा ध्येय सूर्य एव ।

[वर्णविशेष] स्मृत्यन्तरे दर्शित—

गायत्री तु भवेद्रक्ता सावित्री शुद्धवर्णिता ।

सरस्वती तथा कृष्णा उपास्या वर्णभेदेन ॥ इति ।

तत्रैव— गायत्री ब्रह्मरूपा तु सावित्री म्दूररूपिणी ।

सरस्वती विष्णुरूपा उपास्या रूपभेदेन ॥ इति ।

व्यास — न भिन्ना प्रतिपन्नेत गायत्री ब्रह्मणा सह ।

सोऽहमस्मीत्युपास्मीति विधिना येन वनचिन् ॥ इति ।

प्रतिप्रहान्नदीपात्तु पातकादुपपातकात् ।
 गायत्री प्रोच्यते यस्माद्वायन्तं त्रायते ततः ॥
 सवितृद्योतनात्सैव सावित्री परिकीर्तिता ।
 जगतः प्रसवित्री वा वामूपत्वात्सरस्वती ॥ इति ।

व्यासोक्तौ गायत्रीपदस्य मन्त्रे प्रयोगस्तु प्रतिपाद्यादित्यनेन सहा-
 भेदोपचारादिति नृसिंहः ।

स्मृत्यन्तरे—

गायत्रीं चिन्तयेद्यस्तु हृत्पद्मे समुपस्थिताम् ।
 धर्माधर्मविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥ इति ।
 ॥ इति संध्यास्वरूपम् ॥

अथ संध्याकालः ।

धर्मसारे—

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका ।
 संध्यायां गौण-अधमा सूर्यसहिता प्रातःसंध्या त्रिधा मता ॥
 मुख्यकालः । उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्ततारका ।
 कनिष्ठा तारकोपेता सायंसंध्या त्रिधा मता ॥ इति ।

अग्निस्मृतौ—

वर्णविशेषेण का-संध्याकालः प्रागुदयाद्विप्रस्य द्विमुहूर्तकः ।
 लविशेषः । क्षत्रियस्य तदर्थं स्यात्तदर्थं स्याद्विशोऽप्युत ।
 तथैवास्तमिते तेषां वैश्यादीनामयं क्रमः ॥ इति ।
 दक्षः— रात्र्यन्तयामनाडी द्वे संध्याकालोऽयमुच्यते ।
 दर्शनाद्रविरेखायास्तदन्तो मुनिभिः स्मृतः ।
 अध्यर्धयामादासायं संध्या माध्याह्निकीप्यते ॥ इति ।
 ॥ इति संध्याकालः ॥

अथ देशः ।

व्यासः— गृहे त्वेकगुणा संध्या गोष्ठे दशगुणा स्मृता ।
 शतसाहस्रिका नद्यामनन्ता विष्णुसन्निधौ ॥
 यहिः संध्या दशगुणा गर्तप्रस्रवणेषु च ।
 ख्याते तीर्थे शतगुणा ह्यनन्ता जाह्नवीजले ॥

शातातपः—

अमृतं मद्यागन्धं च दिवामैयुनमेव च ।

पुनाति वृषलस्यान्नं बहिः संध्या हुंपासिता ॥ इति ।

विहृण्णलोपप्रसंगेन बहिर्गमने अवकाशाभावे आह्रात्रिः—

संध्यात्रयं तु कर्तव्यं द्विजेनात्मविदा सदा ।

उभे संध्ये तु कर्तव्ये ब्राह्मणैस्तु गृहेष्वपि ॥ इति ।

॥ इति देशः ॥

अथ प्रयोगः ।

शौनकः—

प्राणानायम्य विधिवद्वाग्यतः संयनेन्द्रियः ।

अथ संध्यामुपासिष्य इति संकल्प्य मार्जयेत् ॥

तिसृभिर्मार्जनं धुर्यात् आपोहीति कुशोदकैः ।

पादे पादे क्षिपेदापो मूर्ध्नि प्रणवसंयुताः ॥

स एव— नासिकामङ्गुलीभिश्च तर्जनीमध्यमादृते ।

सव्येन तु समाकृष्य दक्षिणेन विसर्जयेत् ॥

प्रणवं व्याहृतीः सप्त गायत्री शिरसा सह ।

त्रिःपठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥

शनैर्नासापुटे वायुमुत्सृजेन्न तु वेगलः ।

न कम्पयेच्छरीरं तु स योगी परमो मतः ॥ इति ।

ऋग्विधाने—

नवप्रणवयुक्तेन आपोहिष्ठा द्र्युचेन तु ।

संवत्सरकृतं पापं मार्जनान्ते विनश्यति ॥

ऋक्त्रये प्रतिपादमादौ प्रणवे सति नव प्रणवाः ।

प्रश्नाप्याह प्रयोग पारिजाते—

आपोहिष्ठादिभिः पादैः शिखर्यसेऽथ विप्रुषः ।

यस्य क्षयायेत्यभस्तात्क्षिप्त्वाङ्घ्रिः परिपेचयेत् ॥ इति ।

स एव— धाराच्युतेन तोयेन संध्योपास्तिर्विगर्हिता ।

कथं तर्हीत्यत आह—

नथां तीर्थे हृदे वापि भाजने मृन्मयेऽपि वा ।

औदुम्बरे च सौवर्णे राजने दाग्मंभवे ।

मृत्वा तु वामहस्ते वा संध्योपास्ति समाचरेत् ॥ इति ।

अथ द्वितीयमार्जनम् ।

कात्यायनः—

प्रणवो भूर्भुवःस्वश्च गायत्री च तृतीयका ।
अद्भेदता ऋचश्चैव चतुर्थमिति मार्जनम् ॥

भगवान्—

प्रणवेन व्याहृतिभिर्गीयत्र्या प्रणवाद्यया ।
आपोहिष्ठेतिसूक्तेन मार्जनं हि चतुर्थकम् ॥

प्रजापतिः—

ऋगन्ते मार्जनं कुर्यात्पादान्ते वा समाहितः ।
अर्बर्चान्तेऽथवा कुर्याच्छिष्टानां मतमीदृशम् ॥

अथ पापनिरसनम् ।

भगवान्—

उद्धृत्य हृक्षणे हस्ते जलं गोकर्णवत्कृतं ।
निःश्वासं नासिकाग्रे तु पाप्मानं पुरुषं स्मरेत् ॥
ऋतं चेति त्र्यृचं वाऽपि [द्वेपदां वा अपेक्ष्य चम् ।
दक्षनासापुटेनैव पाप्मानमपसारयेत् ।
तज्जलं नाबलोक्याथ वामभागे क्षितौ क्षिपेत् ॥

द्वपदा च वाजसनेयके—]

द्वपदादिव मुमुक्षानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ।
पूतं पवित्रेणैवाज्यमापः शुद्धं तु मैत्रसः ॥ इति ।

कात्यायनः—

करंणोत्सृज्य सलिलं प्राणभासज्य तत्र च ।
अपेक्षितयत्तामुर्वा त्रिः सट्छाद्यमर्पणम् ॥ इति ।

आसज्य निरुध्य विहृत्यः शरणाशक्तत्रिययः

गृह्यपरिशिष्टे—“ तदुदकमवीक्षमाणो वामतो मुवि क्षीप्रपातेन
क्षिप्त्वा तं पाप्मानं वज्रहतं सहस्रधा दलितं माययेत् ” इति ।

स्मृत्यन्तरे—

प्रहृत्याशिरस्कं च स्वर्णस्तेयमुभद्रयम् ।
सुरापानहृद्रायुक्तं गुरुन्यफटिद्वयम् ॥

तत्संयोगपदद्वन्द्वमङ्गप्रत्यङ्ग पातकम् ।

उपपातकरोमाणं रक्तश्मश्रुविलोचनम् ।

रसङ्गचर्मधरं कृष्णं क्षुधौ पापं विचिन्तयेत् ॥ इति ।

॥ इति पापपुरुषनिरसनम् ॥

अथार्घ्यदानम् ।

तच्च अङ्गं न प्रधानं फलसंयन्वाभावात् । गृह्यपरिशिष्टे—अथाचम्य दर्भपाणिः पूर्णमुदकाञ्जलिमुद्धृत्यादित्याभिमुखः स्थित्वा प्रणवव्याहृतिपूर्वया सावित्र्या त्रिनिवेदयन्नुत्क्षिपेत्तदेवार्घ्यनिवेदनम् । असावादित्यो ब्रह्मेति प्रदक्षिणं परिपतन्परिपिच्याप उपस्पृशेत् इति ।

मध्याह्ने विशेषस्तत्रैव—अथाकृष्णीयया हंसवत्या वा त्रिःसकृद्गार्घ्यमुत्क्षिपेत् ।

आश्वलायनः—

ततस्तिष्ठञ्जलं गृह्य प्राङ्मुखोऽञ्जलिना स्मरेत् ।

स्थानादौ सुस्थितं तेजः स्फटिकज्योतिषा समम् ॥

उत्तीर्य तच्च संप्राप्तं दक्षिणेन यथाञ्जलिम् ।

व्याहृत्यादिजपेन्मन्त्रं स्मृत्वैवं परिवो रवेः ॥

मन्देहान्युध्यतः क्रूराभिक्षिपेत्तेष्वयाञ्जलिम् ।

षोडशाक्षरमन्त्रेण पुनराकृष्य सत्वरः ॥

पुनर्जलं गृहीत्वैवं तेजोमन्त्रं च संस्मरन् ।

एवं त्रिवारमावृत्त्य दग्ध्वा तानसुरान्द्विजः ॥

मन्त्रेणाकृष्य तत्तेजः स्थानादौ स्थापयेत्स्मरन् ।

पूर्ववद्द्वामभागैण स्मृत्वा संस्थाप्य चात्मनि ॥

प्रदक्षिणं समावर्त्य जलं गृह्याचमेत्ततः ॥ इति ।

स्थानादावाधारमण्डपे नोसादक्षिणरन्ध्रेण आधारमण्डपाज्ज्योतिरञ्जलिमागतं मन्देहाख्यराक्षसनाशाय तोयेन सह क्षिप्तं गायत्रीशिरसा तासावासरन्ध्रेण पुनराधारमण्डपे स्थापयामीति सर्वज्ञात्यर्थः ।

षोडशाक्षरमन्त्रमाह व्यासः—

षोडशाक्षरकं ब्रह्म गायत्र्यास्तु शिरः स्मृतम् ।

“ॐ आपोज्योतिः” इत्येष मन्त्रो वै तैत्तिरीयके ॥ इति ।

सप्रदे— मुच्छस्तेन दातव्य मुद्रा तत्र च कारयेत् ।
 तर्जन्यङ्गुष्ठयोगे तु राक्षसी मुद्रिका स्मृता ॥
 राक्षसी मुद्रिकार्घेण ततोय रुधिर भवेत् ।
 जलेष्वर्घ्यं प्रदातव्यं जलाभावे शुचिस्थले ।
 सप्रोक्ष्य वाग्निना सम्यक् ततोऽर्घ्यं तु प्रदापयेत् ॥ इति ।

अथ गायत्रीजपः ।

याज्ञवल्क्य —

जपन्नासीत सावित्रीं प्रत्यगातारकोदयात् ।
 मध्याह्नाह् प्रातरेव हि तिष्ठेदासूर्यदर्शनात् ॥
 सायं प्रत्यङ्मुख्यासीन आनक्षत्रोदयं जपेत् ।

प्रातस्तु प्राङ्मुखस्तिष्ठन्नासूर्योदयमित्यर्थः ।

गृह्यपरिशिष्टे—“शुचौ देशे दर्भान्भसोक्षिते दर्भान्सस्तीर्य व्याहृति-
 भिरुपविश्य प्राणायामत्रयं कृत्वा आत्मानं व्याहृतिभिरभ्युक्ष्य सावित्र्या
 ऋषिदैवतच्छन्दास्यनुस्मृत्य षड्विंशदङ्गमन्त्रैर्यथाङ्गमात्मानं न्यस्यात्मानं
 सद्रूपं भावयेत्” तद्यथा “तत्सवितु” हृदयानम इति हृदये । “ वरुण्य ”
 शिरसे स्वाहेति शिरसि । “भर्गो देवस्य” शिरसायै बौपदिति शिरसा
 याम् । “धीमहि” कवचायहुमित्युरसि । “ धियो या नो ” नेत्रत्रयाय
 बौपदिति नेत्रललाटेषु न्यस्याथ “प्रचोदयात्” अस्त्रायफडिति वरुणले-
 ऽख्य प्राचादिषु दशसु न्यसेदेषोऽङ्गन्यासः । एवमप्येके नेच्छन्ति स हि
 विधिरवैदिक इति । अथ मन्त्रदेवता व्यात्वा ‘आगच्छ वरदे देवि’ इत्यावाह्य
 तिमन्त्रार्धनक्षत्रेष्वामण्डलदर्शनान्मन्त्रार्थमनुसदधानं प्रणवव्याहृतिपूर्विका
 सावित्रीं जपेत् ॥ इति ।

भगवान्—

सायं प्रातश्च मध्याह्ने सावित्रीं वाग्यतो जपेत् ।
 सहस्रपरमा देवीं शतमध्या दशवरां ॥
 गायत्रीं सस्मरेद्धीमान्हृदि वा सूर्यमण्डले ।
 यत्नस्तोषणं, यौनं, यौतं, यन्त्रार्थं यत्नतः ।
 अन्यप्रत्नमनिर्वेदो जपसपत्तिहेतवः ॥ इति ।

व्यासः—

अष्टोत्तरशतं नित्यं अष्टाविंशतिमेव वा ।
विबिना दशकं चाऽपि त्रिकालेषु जपेद्बुधः ॥ इति ।

जपे आसनान्याह स एव—

कौशेयं कम्बलं चैव अजिनं पट्टमेव च ।
दारुजं तालपत्रं वा आसनं परिकल्पयेन् ॥
कुण्डाजिने ज्ञानसिद्धिर्मांक्षश्चाव्याघ्रचर्मणि ।
वशाजिने व्याधिनाशः कम्बले दुःखमोचनम् ।
अभिचारे नीलवर्णं रक्तं वश्यादिकर्मणि ।
शान्तिके कम्बलं प्रोक्तं सर्वेष्टं चित्रकम्बले ॥ इति ।

अपे भासनानि ।

वशा वन्ध्या सा च भृगी व्याघ्री वा । उपरिस्थितेः

स एव—

वंशासने तु दारिद्र्यं पापाणे व्याधिसंभवः ।
धरण्यां दुःखसंभूतिर्दौर्भाग्यं छिद्रदारुजे ।
मृणे धनयशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः ॥ इति ।

उपवेशने मन्त्र उक्तो गायत्रीफल्ये—

पृथिव्य त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं शुक्ल चासनम् ॥ इति ।

ऋष्याद्याह—

पृथिव्या मेरुपृष्ठं तु ऋषिरित्यभिधीयते ।
मुतलं छन्द इत्याहुः कूर्मो वै देवता स्मृता ।
मेरोरारोहणे तस्य विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ इति ।

विश्वामित्रः—

उत्तमं मानसं जाप्यमुपांशु मध्यमं विदुः ।
अधमं वाचिकं प्राहुः सर्वमन्त्रेषु वै द्विजाः ॥ इति ।

वृद्धमतुः—

वस्त्रेणाच्छाद्य तु करं दक्षिणं यः सदा जपेत् ।
तस्य तत्सफलं जप्यं तर्ह्यनिमफलं स्मृतम् ॥ इति ।

गौतमः—गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्वेच्छया कर्म कुर्वतः ।

अशुचेर्वा विना संख्यां तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ इति ।

वौधायन — नाभेरधसस्पर्शं कर्मसंयुक्तो वर्जयेदिति ।
हारीत —

रंजतेन्द्राक्षकैर्माला तथैवाङ्गुलिपर्वभि ।
शत स्याच्छङ्खमणिभि प्रवालैश्च सहस्रकम् ॥
रुदिकैर्दशसाहस्र मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ।
पद्माक्षैर्दशलक्ष तु सौवर्णे कोटिरुच्यते ।
कुशमण्ड्या च रुद्राक्षैरनन्तफलमुच्यते ॥ इति ।

प्रजापति —

अष्टोत्तरशतं दुर्योधनु पञ्चाशिका तथा ।
सप्तविंशतिना वाऽपि ततो नैवाधिका मता ॥

गोभिल —

आयावित्यनुवाकस्य वामदेव ऋषि स्मृत ।
आनुष्टुभ भवेच्छन्दो वाग्देवी दयता स्मृता ।
आवाहने तु गायत्र्या विनियोग प्रकीर्तित ॥

व्यासोऽपि —

आवाहयेत्तु गायत्रीं सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
आगच्छ वरद दधि जपे मे सन्निधौ भव ।
गायन्त प्रायसे यस्माद्गायत्री तेन सोच्यत ॥ इति ।

समव्याहृतीनां देवताद्याह बृहस्पराशर —

अग्निर्वायुस्तथा सूर्यो बृहस्पत्याप एव च ।
इन्द्रश्च विश्वेदेवाश्च देवता समुदीरिता ॥
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरथ च ।
त्रिष्टुप् च जगती चैव छन्दास्येतान्यनुक्रमात् ॥
[भरद्वाज कश्यपश्च गौतमोऽत्रिस्तथैव च ।
विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठ ऋषयः क्रमात् ॥ इति ।]

अथोपस्थानम् ।

गृहपरिशिष्टे — “ जाननेदसे सुनरामसोम ” “ तच्छयोरावृणीमहे ”
“ नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वभये ” इत्युपस्थाय प्रदक्षिण दिश साधिना-

नत्वाथ संध्यायै सावित्र्यै गायत्र्यै सरस्वत्यै सर्वाभ्यो देवताभ्यश्च नमस्कृत्य ततः—

उत्तमे शिखरे देवि भूम्यां पर्वतमूर्धनि ।

प्राह्मणैरभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ॥ इति ।

संध्यां विस्तृज्य 'भद्रज्ञो अपि वातयमनः' इत्युक्त्वा शान्तिं च त्रिरुद्या-
र्यं प्रदक्षिणं परिक्रमन्

आसत्यलोकात्पातालादालोकालोकपर्वतात् ।

ये सन्ति प्राह्मणा देवास्तेभ्यो नित्यं नमो नमः ॥

इति नमस्कृत्य भूमिमुपसंगृह्य गुरुनृद्धांश्चोपसंगृहीयात् । एवं सायम्—” इति ।

मध्याह्नसंध्यायां विशेषस्तत्रैव— “उद्गाहुरुदङ्मुखः ” उदुत्यं जातये-
दसं ” “ चित्रं देवानां ” इति सूक्ताभ्यामादित्यमुपस्थाय जपमासीनो
यथेष्टकालं कुर्यादित्येष संध्याविधिर्याख्यातः ” इति ।

दैवाद्यदि माध्याह्निकं दिवा न कृतं तत्र विशेषः स्मर्यते—

रात्रौ प्रहरपर्यन्तं दिवाकृत्यानि कारयेत् ।

अवगाहं ब्रह्मयज्ञं सौरजप्यं च वर्जयेत् ॥ इति ।

सायंप्रातःकालयोरुपस्थाने विशेषमाह भगवान्—

नमो ब्रह्मण इत्येतां त्रिरुक्त्याय दिशो नमेत् ।

इमं मे वरुण तत्वेति सायंकाले विशेषतः ।

मित्रस्य चर्पणी द्वाभ्यां प्रातःकाले विशेषतः ॥ इति ।

आश्वलायनस्मृतौ तु—

ऋग्भिश्चतसृभिर्मैत्रैर्गायत्रैरेव षडृचः । इत्युक्तम् ।

मैत्रैर्मित्रदैवतैः “ मित्रस्य चर्पणी धृत ” इत्यादिभिरित्यर्थः ।

माधवीये नारायणः—

वारुणीभिरथादित्यमुपस्थाय प्रदक्षिणम् ॥ इति ।

भरद्वाजः—

सूतके मृतके चापि प्राणायामममन्त्रम् ।

तथा मार्जनमन्त्रांस्तु मनसोच्चार्य मार्जयेत् ॥

गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायार्थं निवेदयेत् ।

मार्जनं तु न वा कार्यमुपस्थानं न चैव हि ॥ इति ।

गायत्र्यपि दशवार जप्या ।

आपन्नश्चाशुचि काले तिष्ठन्नपि जपेद्दश ।

इत्याश्वलायनोक्ते । आपन्न आपद्मस्त । अशुचिराशौचवान् । अङ्गा-
न्तरप्यसामर्थ्येऽपि अर्घ्यप्रक्षेप आवश्यक

जलाभावे महामार्गे बन्धने त्वशुचावपि ।

उभयो सध्यो काले रजसावार्घ्यमुत्सृजेत् ॥ इति अग्निस्मृते ।

अशुचौ आशौच इत्यर्थः ।

अग्निश्चेति अस्यार्थः — मा इति मा मन्यु क्रोध तदभिमानिनी देवते
त्यौपनिषदा । मन्युपतयो जितक्रोधा अग्न्यादयो मा रक्षन्तामित्य
न्वयः । शिशना शिशनेन “सुषा सुलुक्” इति डादेशः । इदं पापं तत्कारण
चाह्वारम् अमृतयोनौ मोक्षहेतौ अग्न्याख्ये ज्योतिषि परब्रह्मणि जुहो
मि । तदर्थमिदं तोयं स्वाहा मदीये जाठराम्नी हुतमस्तु । एव सूर्यश्चेत्यपि ।

आप पुनन्त्वित्यादि आप पृथ्वी मच्छरीरम् यच्छरीरं सा पृथ्वी-
त्यारण्यकात् । सा च मामात्मानं पुनातु । किंच ब्रह्मणो वेदस्य पति
परमात्मा पुनन्तु पुनातु व्यत्ययेन बहुवचनम् । ब्रह्म वेदं पूता पूतमि
त्यर्थः । “सुषा सुलुक्” इति पूर्वसवर्णः । सर्वं परिहृत्येति शेषः । मा
पुनन्तु स्वाहा जाठराम्नी हुतमस्तु ।

प्रणवसप्तव्याहृतिगायत्रीतच्छिरसा संक्षेपतोऽर्थं कथ्यते—ॐ ब्रह्म,
भवन्त्यस्माद्भूतानीति भू, भावयति स्थापयति विश्वमिति भुवः, गुणा-
भावच्छान्दसः । सुष्ठु अर्च्यते प्राप्यते तदिति स्वः, महः पूज्यः, जन
जनने ‘तप आलोचने’ सत्यं कालत्रयावाध्यं, सवितु देवस्य सूर्यस्य,
वरेण्यं भजनीयं भर्गं ससारभर्जनात् ज्योतीरूपं भीमहि ध्यायेम । य
स सविता नो धियं प्रचोदयान् प्रेरयेदिति छिद् । आप व्यापकः,
ज्योतिश्चिद्रूपः, रसः सुखः, अमृतं मोक्षः, ईदृग्ब्रह्मेति ॐ अङ्गीकुर्वे चिन्त
यामीति यावत् ।

॥ इति सध्याप्रवरणम् ॥

अथ काम्यजपाः ।

वसिष्ठ —

समुष्टीत्यृचं वापि सद्योजानादि पञ्चकम् ।

पञ्चाश्वरं महामन्त्रं जपेदनुदिनं सुधीः ॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यं संततिं पूर्णजीवनम् ।
संपत्समृद्धिं सौख्यं च लभते शिवशासनात् ॥ इति ।

आचार्यः—

वैष्णवैर्वारुणैः सौरैः पावमानाभिरेव च ।
क्षपयेदाशु पापानि कामांश्च निखिलान्लभेत् ॥
रौद्रैर्विशेषतो घोरान्द्रहत्यादिकानपि ।
क्षपयेत्पौरुषेणापि कामांश्चेत्यति दुर्लभान् ॥

इयति प्राप्नोति ।

शतरुद्रेण जप्तेन चास्यवामीयकेन वा ।
मोक्षमृच्छत्यसंदेहं किमन्यदधिकं ततः ॥ इति ।

ऋग्विधाने—

विष्णोर्नुकं जपन्सूक्तं विष्णुरेव भविष्यति ।

स्तानकाले जप्यमाह व्यासः—

द्वुपदा नाम गायत्री वेदे वाजसनेयके ।
सकृदन्तर्जले जप्त्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ इति ।

साधु पूर्वमयमर्पणप्रसङ्गेनालेखि ।

सुमन्तुः—हंसः शुचिपदित्येतामृचमन्तर्जले जपन् सर्वस्मात्पापा-
द्यप्रमुच्यतेऽपि वा व्याहृतीरन्तर्जले जपन्सर्वस्मात्पापा द्यप्रमुच्यते ॥
इति । गौतमः—अपि वा गायत्रीं पच्छोर्बर्चशः समस्तामपि त्रिरन्तर्जले
अपन्सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यतेऽपि वा प्रणवं त्रिरन्तर्जले जपन्सर्वस्मात्पा-
पात्प्रमुच्यते । इति ।

॥ इति काम्यजपाः ॥

अथ होमविधिः ।

दक्षः— संध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमो विधीयते ॥ इति ।
अशक्तौ ■ एवाह—

ऋत्विक् पुत्रो गुरुर्धर्ता भागिनेयोऽयं विद्वपतिः ।
एतैरपि हुतं यत्स्यात्तद्धुतं स्वयमेवाह ॥ इति ।

विद्वपतिर्जीमाता ।

आश्वलायनः—

स्वयं पत्न्यपि वा पुत्रः कुमार्यन्तेवासी वा ।

कात्यायनः—

असमर्शं ॥ दम्पत्योर्होतव्यं नर्त्विगादिना ।

द्वयोरप्यसमर्शं तु भवेद्धुतमनर्थकम् ॥

उभयोः संनिधौ मुख्यम् अन्यतरसन्निधावनुकल्पः ।

प्रातर्होमकालमाहमनुः—

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ॥ इति ।

सायं होमकालमाह कात्यायनः—

यावत्सम्यग् न भाव्यन्ते नमस्पृश्वाणि सर्वतः ।

न्योदितत्वं तु नापैति तावत्सायं तु ह्यते ॥

यत्वाभलायनः—

संगवान्तः प्रातः प्रदोषान्तः सायमिति तद्वीणशालपरम् ।

यदपि बौधायनः—

आसायं कर्मणः प्रातराप्रातः सायं कर्मणः ।

आहुतिर्नातिपद्येत पार्वणं पार्वणान्तगतम् ॥ इति ।

तद्वीणतरपरम् । पार्वणं स्यालीपासो, दर्शेष्टिः पौर्णमासेष्टिश्च ।

पशुहोममाह मरीचिः—

शरीरापङ्गवेद्यत्र भयाद्वार्तिः प्रजायते ।

तथान्यास्वपि चापसु पशुहोमो विधीयते ॥ इति ।

कात्यायनः—

विद्यायामि सभार्यश्चेत्सीमामुल्लङ्घय गच्छति ।

होमकालात्यये तस्य पुनराधानमिष्यते ॥

होमश्च स्वगृह्योक्तविधिना बोध्यः ।

भगद्वाजः—

होमं यैतानिकं कृत्वा स्मार्तं कुर्याद्विप्रश्चक्षुः ।

स्मृतीनां वेदमूलद्रात्स्मान् केचित्सुरा विदुः ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः—

कर्म स्मार्तं त्रिवादाप्नो शुर्वीत प्रत्यहं गृही ।

दायकालादृते वापि श्रौतं यैतानि फासिषु ॥

यैतानि साः गार्हपत्यादयः स्मार्तपदं गृह्योक्तकर्मपरम् ।

यैगर्हिकेऽप्यौ शुर्वीत गार्ह्यं कर्म यथाविधि ।

पञ्चशतत्रिंशत् च प्रतिस्रान्त्रादिष्वौ गृही ॥

इति मनूक्तेः । अन्याहिकीं प्रात्याहिकीम् । अन्यत्तु स्मार्तं ग्रहमख-
महारुद्रहोममूलशान्त्यादि लौकिकाम्नौ । अत एव विज्ञानेश्वरेण विनाय-
कशान्तौ लौकिकोऽग्निरुक्तः । ग्रहशान्तौ तदीये स्मार्ताग्निरेखने तु
मूलं चिन्त्यम् ।

विष्णुः— बहुशुष्केन्धने वाग्नौ सुसमिद्धे हुताशने ।
विधूमे लेलिहाने च होतव्यं कर्मसिद्धये ॥
योऽनर्चिपि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारे चैव मानवः ।
मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्चाभिजायते ॥ इति ।
॥ इति होमप्रकरणम् ॥

अथ नित्यदानम् ।

महाभारते—

एकस्मिन्नप्यतिक्रान्ते दिने दानविवर्जिते ।
दस्युभिर्मुपितस्येव युक्तमाक्रन्दितं भृशम् ॥ इति ।
तस्माद्विभवा नुसारेण पूगीफलादिकमपि प्रत्यहं देयमिति नृसिंहः ।

अथ मङ्गलदर्शनम् ।

नारदः— लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः ।
हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टमः ॥
मनुः— अग्निचित्कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः ।
दृष्टमात्राः पुनन्त्येते तस्मात्पश्येत्सदा बुधः ॥ इति ।
॥ इत्यष्टधा विभक्त्याह आद्यभागकृत्यम् ॥

अथ द्वितीयभागकृत्यम् ।

दक्षः— द्वितीये च तथा मागे वेदाभ्यासो विधीयते ॥ इति ।
चतुर्विंशतिमते—

वेदस्वीकरणं पूर्वं विचारोऽभ्यसनं जपः ।
तदानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पञ्चधा ॥ इति ।
कोर्म— जपेदध्यापयेच्छिष्यान्वारयेद्वा विचारयेत् ।
अवेक्षेत च शास्त्राणि धर्मादीनि द्विजोत्तमः ॥ इति ।
दक्षः— समित्पुण्यकुशादीनां स कालः समुदाहृतः ॥ इति ।

अथ तृतीयभागकृत्यम् ।

दक्ष — तृतीये च तथा भागे पोष्यवर्गार्थसाधनम् ॥ इति ।
पोष्यवर्गः ॥ एसाह—

माता पिता गुरुभार्या प्रजाहीन समाश्रित ।
अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्नि पोष्यवर्ग उदाहृत ।
पोष्यवर्गार्थसिद्धयर्थं धनमिच्छेत बुद्धिमान् ॥

आत्मनेपदमार्पम् ।

याज्ञवल्क्य —

कुसूळकुम्भीधान्यो वा याहिकोऽश्वस्तनोऽपि वा ।
जीवेद्वापि शिलोञ्छेन त्रेयानेषा परं परं ॥ इति ।

स्वकुटुम्भभोजनद्वादशदिनपर्याप्तधान्यस्याधारपात्र कुसूलम् । षडहपर्या-
प्तगान्याधार कुम्भी । बहुरीणामुपादानं शिल्पम् । कणोपादानमुञ्छमिति ।

याज्ञवल्क्य —

न राज्ञ प्रतिगृहीयात्कुम्भस्थोच्छास्त्रवर्तिन ॥ इति ।

नारद — शुचीनामशुचीना तु सन्निपातो यथाम्भसाम् ।

समुद्रे समता याति तथा राज्ञा धनागम ॥

यथामौ सस्थिन सर्वं शुद्धिमायाति काश्चनम् ।

एव प्रतिग्रहा सर्वे शुचिता यान्ति राजानि ॥ इति ।

एतद्वार्तिकराजप्रतिग्रहपरम् ।

याज्ञवल्क्य —

कुशा शाक पयो मत्स्या पुष्प गन्धा दधि क्षिति ।

मास शय्यासन धाना प्रत्यारवेय न वारि च ॥

अयायिताहत माहामपि दुष्टृतर्ज्ज्वण ।

अन्यत्र शुलटापण्डपतितभ्यस्तथा द्विज ॥

अथ चतुर्थभागकृत्यम् ।

दक्ष — चतुर्थे तु तथा भागे स्नानार्थं मृदमाहरत् ।

तिलपुष्पकुशादींश्च स्नायाद्याहृतिमे जले ॥

• गृहपरिशिष्टे—अथ मध्यादिने तीर्थभेत्येत्युपक्रम्यायवरुणप्रार्थनादितर्प-
णान्तेनोक्तेन विभिना स्नायाग्नास्मिन्प्राग्प्रक्षयस्तर्पणाद्रूप निष्पीडयेत् ।
अपुत्रादयो हन्ते तथा तर्प्या इति शास्त्रम् ।

प्रातःसंध्यां सनक्षत्रां मध्यमां स्नानकर्मणि ।

सादित्यां पश्चिमां संध्यामुपासीत यथाविधि ॥ इति ।

स्नानकर्मणि कृते सतीति शेषः इति स्मृतिचन्द्रिकायाम् । माध्याह्निकसंध्याप्रकारश्च पूर्वमेवोक्तः ।

अथ पञ्चमहायज्ञाः ।

याज्ञवल्क्यः—

यलिकर्म स्वधा होमः स्वाध्यायाऽतिथिसत्क्रियाः ।

भूतपित्रमरब्रह्ममनुष्याणां महामखाः ॥

आश्वलायनगृह्ये—‘अथातः पञ्चमहायज्ञा देवयज्ञो, ब्रह्मयज्ञो, भूत-
यज्ञः, पितृयज्ञो, मनुष्ययज्ञ इति । तद्यदग्नौ जुहोति स देवयज्ञः, य-
त्स्वाध्यायमधीते स ब्रह्मयज्ञः, यद्वलिं करोति स भूतयज्ञः, यत्पितृभ्यो
ददाति स पितृयज्ञः, यन्मनुष्येभ्यः स मनुष्ययज्ञ इति सानेतान्यज्ञान-
हरहः कुर्वीत’ इति । वीप्सयैते नित्याः ॥

व्यासः—

वैश्वदेवं प्रकुर्वीत स्वशाखाविहितं ततः ।

संस्कृताग्नैर्हि विविधैर्हविष्यव्यञ्जनान्वितैः ॥ इति ।

वैश्वदेवपदं भूतपितृयज्ञानां नाम व्यञ्जनमपि हविष्यमेव घृतादि न
तैलादि । तथा च

स एव—जुहुयात्सर्पिषाभ्यर्क्तं तैलक्षारविवर्जितम् ॥ इति ।

कौर्मे—शालाग्नौ लौकिके वाऽपि जले भूम्यामथापि वा ।

वैश्वदेवस्तु कर्तव्यो देवयज्ञः स वै स्मृतः ॥ इति ।

लौकिकशालाग्न्योः पाकतो व्यवस्थामाहाङ्गिराः—

यस्मिन्नग्नौ पचेदन्नं तस्मिन्होमो विधीयते । इति ।

अत्र वैश्वदेवशब्दो देवभूतपितृयज्ञानां समुदाये प्रयुज्यते । तत्र होमो
देवयज्ञः, वलिर्भूतयज्ञः, स्वधाकारः पितृयज्ञः । एवं च तेनैव पितृयज्ञ-
सिद्धेर्नित्यश्राद्धं नावश्यकम् । अत एव देवलो नित्यश्राद्धं प्रक्रम्य
यथाशक्ति तत्कालानाह—

एतेन विधिना श्राद्धं कुर्यात्संवत्सरं सकृन् ।

त्रिश्चतुर्वा यथाश्राद्धं(?)मासे मासे दिने दिने ॥ इति ।

एव दर्शश्राद्धमपि अशतौ सवत्सरे सऋदेवेत्याहोरात्रायन —

मासिक पार्वण प्रोक्तमशक्तानां तु वार्षिकम् । इति ।

मासिक प्रतिमास कर्तव्य पार्वण दर्शश्राद्धम् ।

वैश्वदेवश्चात्मनोऽन्नस्य च संस्कारार्थं “तानेतान्यज्ञानहरहं कुर्वीत” इति वचनात् । “अथ सायंप्रातः सिद्धस्य हविष्यस्य जुहुयात्” इति वचनाच्च । एकस्य तृभयस्य संयोगपृथक्त्वमिति न्यायात् । नच ‘प्रतिप्रधान गुणावृत्तिः’ इति न्यायात्प्रतिपादकं तदावृत्तिः स्यात् सध्यावन्दनादिव-
द्विभक्तानां पृथगनुष्ठानं च स्यादिति वाच्यं, “यथेकस्मिन्काले पुनः पुनरन्नं पच्येत सऋदेव तद्वलिं तत्र कुर्वीताथ यथेकस्मिन्काले बहुधानं पच्येत गृहपतिमहानसाद्वैतद्वलिं तत्र कुर्वीत” इति गोभिलोक्तेः । एतच्च सायंप्रातः कार्यम् “अथ सायंप्रातः सिद्धस्य हविष्यस्य जुहुयात्” इति आश्वलायनोक्तेः । उभयत्रासभवे प्रातरव द्विरावृत्त्या सह वा कार्यम् यथोक्तं तेनैव—

प्रातरव द्विरावृत्त्या कुर्याद्वा सह तद्विज ।

सायं वा यत् शुभीयात्सृष्ट्वा शोणत स्वयम्(?)॥ इति ।

मनुष्ययज्ञस्यतिथिपूजा ।

एषामन्तरणे प्रायश्चित्तमाह व्यास —

होमान्नदानरहितं न भोक्तव्यं कदाचन ।

अविभक्तेषु ससृष्टेष्वेतेनैव कृतं तु वा ॥

पयोमूलफलैर्वाऽपि पञ्चयज्ञान्समाचरेत् ।

अट्वा पञ्चयज्ञास्तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ इति ।

आश्वलायनः —

वसतामेकपाकेन विभक्तानामपि प्रभुः ।

एकस्तु चतुरो यज्ञान्दुर्याद्वाग्यज्ञपूर्वकान् ॥

वाग्यज्ञो ब्रह्मयज्ञः ।

अविभक्ता विभक्ताश्च पृथक्पाका द्विजातयः ।

कुर्युः पृथक् पृथक् यज्ञान् भोजनात्वाग्निदिने दिने ॥

पृथगप्येकपाकानां ब्रह्मयज्ञो द्विजन्मनाम् ।

सूतकाचैस्त्वशुद्धात्मा न कुर्यान्न च वारयेत् ॥

अत्राविभक्तानां पाकभेदे पृथग्वैश्वदेवानुष्ठानं नाद्रियन्ते शिष्टाः ।

पूर्वोक्तसर्वादृतगोभिलवचोविरोधे कतिपयादृताश्वलोयनवचसो बाधाद्विकल्प इति केचित् ।

यत्तु हरदत्तः—सूतक्रमध्येऽपि ब्रह्मयज्ञभिन्नाश्चत्वारो न त्याज्याः
“तानेतान्यज्ञानहरहः कुर्वीत” इति सूत्रात् । एतस्य हि

सूतके कर्मणां त्यागः संध्यादीनां विधीयते ।

इत्यादिना बाधितानां प्रतिप्रसवेनैव सार्थक्यम् । ब्रह्मयज्ञस्तु न भवति
“तस्य द्वावनध्यायौ यदात्माऽशुचिर्यदेशः” इति सूत्रात् । तन्न ।
‘पञ्चयज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृतिजन्मनोः ।’ इति देयलोक्तेः । अहरहः
कुर्वीतेति तु संध्यावन्दनादिवन्नित्यत्वमात्रबोधकम् । अत एव स्मृत्यन्तरे—
‘आपन्नमपि दातव्यं, आकाष्ठमपि जुहुयादाकचमपि ब्रह्मयज्ञं कुर्यात्’ इति ।

चतुर्विंशतिमते—

अलाभे येन केनाऽपि फलशाकादिभिर्द्विजः ।

पयोदधिघृतैः कुर्याद्वैश्वदेवं सुवेण तु ।

हस्तेनान्नादिभिः कुर्यादजिरञ्जलिना जले ॥

परिशिष्टे—

उत्तानेन तु हस्तेन ह्यङ्गुष्ठामेण पीडितम् ।

संहताङ्गुलिपाणिस्तु वाग्यतो जुहुयाद्विः ॥ इति ।

गृहपरिशिष्टेऽपि—

शाकं वा यदि वा पत्रं मूलं वा यदि वा फलम् ।

संकल्पयेद्यदाहारस्तेनैव जुहुयादपि ॥

स्मृत्यन्तरेऽपि—

कोद्वं चणकं मापं मसूरं च कुलत्थकम् ।

क्षारं च लवणं सर्वं वैश्वदेवे विवर्जयेत् ॥

हविष्याभावे क्षारादिभिरपि अग्नेरीक्षान्यामुष्णे भस्मन्ति होतृन्यमित्याहापस्तम्बः—न क्षारलवणहोमो विद्यते तथा परान्नसंस्पृष्टस्याहविष्यस्य होम उदीचीनमुष्णं भस्मापोह्य जुहुयात्तदुत्तमदुतं चाग्नौ भवतीति ।

वृद्धवसिष्ठः—

अनमिकस्तु यो विप्रः सोऽन्नं व्याहृतिभिः स्वयम् ।

हुत्वा शाकल्यमनैश्च शिष्टं काकवलिं हरेत् ॥ इति ।

चौथायन—

। प्रवासं गच्छतो यस्य गृहे कर्त्ता न विद्यते ।

पश्चान्नो महतामेषा स यज्ञैः सह गच्छति ॥ इति ।

आहात्रिः—

पुत्रो भ्राताऽथवा ऋत्विक् शिष्यश्चशुरभातुल्य ।

पत्नीश्रोत्रिययाज्याश्च दृष्टाश्च बलिर्ममणि ॥

एते च प्रवसन् प्रतिनिधयः ।

ब्रह्मयज्ञस्य पाठप्राप्ता देवयज्ञोत्तरता वाधते आश्वलायन—

स गृह्यविधिना कृत्वा ब्रह्मयज्ञं पुरा द्विजः ।

स्वाध्यायतर्पणाभ्या च गृहमेत्याचरेत्परान् ॥ इति ।

यत्तु बृहस्पति—

स चार्वाक् तर्पणात्कार्यं पश्चाद्वा प्रातराहुते ।

वैश्वदेवावसाने वा नान्यदर्थे निमित्ततः ॥ इति ।

पदाश्वलायनान्यपर, आश्वलायनानां तर्पणस्योत्तराहुत्वेनैव तत्सूत्रा-
त्यागैर्वाक् तर्पणादित्यस्य तद्वितरणप्रत्येन सार्थक्यात् । तस्माद्वाचर्यात्पश्चा-
देति वैश्वदेवावसाने चेत्येवमपि तान्प्रत्येव ।

कारिकायाम्—

इभान्यह्नुचौ देनो प्रागप्राणास्तृणात्पयः ।

दभेयूपवसेत्कर्मण्यत्र प्राङ्मुख एव सन् ॥

पृथ्वीपथं करे सव्ये उत्ताने प्राग्दिगङ्गुलौ ।

पत्रित्रे स्थापयेदुक्ते प्रागग्ने दक्षिणेन ॥ ।

न्यर्धं प्रागङ्गुले तन सर्वध्यादक्षिणं करम् ॥ इति ।

सत्रैव— सूताद्यन्यतमं पूर्वमाभिशंसन्ति शक्तितः ।

आपूर्वा व्याहृतीस्तिष्ठः सम्मत्ताश्च सष्टददेत् ।

पच्छस्त्वर्धचंशः सर्वा सावित्री त्रिवेदेदयः ॥ इति ।

शौनक—

वतो यावत्प्रतिज्ञातमध्यायं सूक्तमेव वा ।

अथ वाप्यन्तनोऽवश्यमधीयीत स्वशक्तितः ॥ इति ।

ऋग्विधाने—

आग्नेयं सूक्तमाद्य तु पुण्यं ब्रह्मर्षिसमतम् ।

रायस्पोपकरं धन्यं जपन्विप्रोऽर्थमाप्नुयात् ॥
 ऋचं सर्वोमिमां जप्त्वा स पूतो नियतः शुचिः ।
 संहिताफलमाप्नोति ऋग्वेदस्य न संशयः ॥ इति ।

तथा— अभिमीळे जपेत्सूक्तं पापघ्नं श्रीकरं परम् ।

पारायणफलं तस्य वेदानां स्यात्सहस्रशः ॥ इति ।

आश्वलायनगृहे—‘स यावन्मन्येत तावदधीत्येतया परिदधाति’
 “नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्रये नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः । नमो वाचे
 नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमि” इत्येनां च त्रिः पठेत्
 “नमो ब्रह्मण” इति परिधानीयं त्रिरन्वाह” इति श्रुतेः ।

उपवेशनाशक्तौ आश्वलायनगृहे—“स यदि तिष्ठन्ब्रह्मन्नासीनः
 शयानो वा यं यं व्रतमुधीते तेन तेन ह्यस्य व्रतुनेष्टं भवतीति विज्ञायते ।
 तस्य द्वावनप्यायौ यदात्माऽऽचिर्यद्देशः” इति द्वावित्यनप्यायान्तरपरि-
 संख्यार्थम् । केषुचिन्नैमित्तिकानप्यायेषु विशेषमाहापस्तम्भः—‘अथ यदि
 यातो वायास्तनयेद्वा विद्योतते वा स्फूर्जेद्वैकां चर्चमेकं वा यजुरेकं वा
 सामाभिध्याहरेत् भूर्भुवः स्वः सत्यं तपः श्रद्धायां जुहोमि इति ॥

अथ तर्पणम् ।

आश्वलायनगृहे—देवतास्तर्पयति प्रजापतिर्ब्रह्मा वेदा देवा ऋषयः
 मर्वाणिच्छन्दांस्थोद्धारो वषट्कारो व्याहृतयः सावित्री यज्ञा द्यावापृ-
 थिवीअन्तरिक्षमहोरात्राणि सांख्याः सिद्धाः समुद्राः नद्यो गिरयः क्षेत्रौ-
 पथिवनस्पतिगन्धर्वाप्सरसो नागा वयांसि गावः साध्या विप्रा यक्षा रक्षां-
 मि भूतान्येवमन्तानि । अथ ऋषयः, शतर्चिनो माध्यमो गृत्स्तमदो विश्वा-
 मित्रो वामदेवोऽत्रिर्मरुद्वाजो वसिष्ठः प्रगाथाः पावमान्यः क्षृश्रसूक्ता महा-
 सूक्ता इति । प्राचीनावीती, सुमन्तुजैमिनिवैशंपायनपैलसूत्रभाष्यभारत-
 महाभारतधर्माचार्या जानन्तिवाहविगार्ग्यगौतमशतकल्यवाध्रव्यमाण्ड-
 व्यमाण्डकेया गर्गीवाचाश्रवी वडवाप्रावीथेयी सुलभाम्रीत्रेयी कहोळं कौपी-
 तकं महाकौपीतकं पैद्गथं महापैद्गथं सुयज्ञं सांख्यायनम् ऐतरेयं महैतरेयं
 शाकलं वाष्कलं सुजातवक्त्रमौदवाहिं महौदवाहिं सौजामिं शौनकमाश्वला-
 यनं ये चान्ये आचार्यास्ते सर्वे तृप्यन्तु प्रतिपुरुषं पितृस्तर्पयित्वा’ इति ।
 अत्र प्राजापत्याद्या एवमन्तानीत्यन्ता एकोनत्रिंशन्मन्त्राः । अथ ऋषय
 इति तु न मन्त्रः, शतर्चिन इत्याद्या महासूक्तान्ता द्वादश, सुमन्तिवत्याद्या

ये चान्य इत्यन्ता द्वाविंशतिः ॥ ते च तृप्यतु तृप्यतां तृप्यन्त्विति यथायो-
ग्यमध्याहृत्य प्रयोज्याः । एवमन्तानीति मिश्रो मन्त्र इति नारायणवृत्तौ ।
महासूक्तास्तृप्यन्त्वित्यस्यानन्तरं पूर्वोक्ताः सनकादयः सप्त तर्प्याः ।
द्यावापृथिवी तृप्येतामिति लोहात्मनेपदं प्रयुज्यते बह्वस्तत्र, धातोः पर-
स्मैपदित्वात् । लिङि तु परस्मैपदं भवेत् । तत्र ॥ कारिकाशौनकाशुक्त-
स्तृप्यतु तृप्यन्तामिति लोट्प्रायपाठविरोधः । तेन द्यावापृथिवी तृप्यता-
मित्येव प्रयोज्यामिति भट्टोजिदीक्षिताः । सा च कारिका—

अपां समीपमागत्य तर्पयेदय देवताः ।

एवमन्तानि तृप्यन्त्वित्यन्तैश्च प्रतिमन्त्रकम् ॥

सिञ्चेत्प्रजापतिस्तृप्यत्वित्यपो देवतीर्थतः ।

धातुस्तृप्तिर्यथालिङ्गं मन्त्रान्तेषु प्रयुज्यते ॥ इति ।

शौनकोऽपि—मन्त्रैः प्रजापतिस्तृप्यत्वित्यारभ्य यथोदितैः ।

एवमन्तानि तृप्यन्त्वित्येव मन्त्रैर्यथाक्रमम् ॥ इति ।

कहोळादिष्वाम्बुलायनान्तेषु षोडशसु द्वितीयान्तेषु तर्पयामीति शेषो
योज्यो योग्यत्वात् ।

तच्च नित्यमुक्तं प्रयोगपारिजाते स्मृत्यन्तरे—

देवताश्च मुनींश्चैव पितृन्यो हि न तर्पयेत् ।

देवादीनामृणी भूत्वा नरकं प्रतिपद्यते ॥

मदनपारिजाते संग्रहे—

अन्वारद्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु ।

सव्योत्तराभ्या पाणिभ्यामथवा तर्पणं भवेत् ॥

सव्यान्वारद्धेन एकेनैव दक्षिणेन पाणिना इति तु आम्बालयनपरं,
पाणिभ्यामिति त्वन्यान्प्रतीति व्यवस्थंति केचित् । व्यवस्थामूलं चिन्त्यम् ।

कारिका—प्राचीनावीत्यथेदानीं तर्पयेत्पितृतीर्थतः ॥ इति ।

व्यासः—एकैकमखलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादयः ।

अर्हन्ति पितरस्त्रींस्त्रीन् स्त्रियस्त्वेकैकमखलिम् ॥ इति ।

योगयाज्ञवल्क्यः—

सनकश्च सनन्दनस्तृतीयश्च सनातनः ।

कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिरस्तथा ।

‘पञ्च’ इति शब्दोऽत्रार्थः, ‘असुरिश्च’ इति शब्दोऽत्रार्थः, ‘वोढुः’ इति शब्दोऽत्रार्थः, ‘पञ्चशिरस्तथा’ इति शब्दोऽत्रार्थः ।

एतदाश्वलायनान्यपरम् । तेषां शतर्चिनो द्वादशैव तत्सूत्राक्तत्वादिति केचित् । सनकादयोऽपि तेषामदृष्टार्थत्वादिति तु युक्तम् । कासुचित्स्त्रीषु विशेषमाह सांख्यायनः—

मातृमृश्यास्तु यास्तिस्तस्तासां त्रींस्त्रीजलाजलीन् ॥ इति ।
सपत्न्याचार्यपत्नीनां द्वौ द्वौ दद्याजलाजलीन् ॥ इति ।

अत्र विशेषमाह हारीतः—

यसित्वा वसनं शुष्कं स्थले विस्तीर्णवर्हिषि ।
विधिज्ञस्तर्पणं कुर्यान्न पात्रेषु कदाचन ॥
पात्राद्वा जलमादय शुभे पात्रान्तरे क्षिपेत् ।
जलपूर्णेऽथवा गते न स्थले तु विवर्हिषि ॥ इति ।

पितामहः—हेमरूप्यमयं पात्रं ताम्रकांस्यसमुद्भवम् ।
पितृणां तर्पणे पात्रं मृन्मयं तु परित्यजेत् ॥ इति ।

शङ्खः—उदकेनोदकं दद्यात्पितृभ्यश्च कदाचन ।
उत्तीर्य च शुचौ देशे कुर्यादुदकतर्पणम् ॥ इति ।

अग्निपुराणे—प्रागमेषु सुरास्तर्प्या मनुष्याश्चैव मथ्यतः ।
पितरो दक्षिणामेषु एकद्वित्रिमिताजलीन् ॥ इति ।

मरीचिः—सौवर्णेन च पात्रेण ताम्ररूप्यमयेन वा ।
औदुम्बरेण खड्गेन पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ इति ।

विष्णुः—यत्राशुचि स्थलं वा स्यादुदके देवताः पितृन् ।
तर्पयेत्तु यथाकाममप्सु सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ इति ।

योगयाज्ञवल्क्यः—

यद्युद्धृतं निषिञ्चेत्तु तिलान्संमिश्रयेज्जले ।
अतोऽन्यथा ॥ सव्येन तिला ग्राह्या विचक्षणैः ॥

अन्ययेति अनुद्धृतेन तर्पण इत्यर्थः ।

गोभिलः—रोमसंस्थांस्तिलान्कृत्वा यस्तु तर्पयते पितृन् ।
पितरस्तर्पितास्तेन रुधिरेण मलेन च ॥ इति ।

स्मृतिभास्करे—

कुशाग्रैस्तर्पयेद्देवान्मनुष्यान्कुशमथ्यतः ।
द्विगुणीकृत्यमूलाग्रैः पितृन्संतर्पयेद्विजः ॥ इति ।

योगयाज्ञवल्क्य —

कव्यवालोऽनल सोमो यमश्चैर्यमा तथा ।

अग्निष्वान्ता सोमपाश्च तथा वहिपद्मोऽपि च ।

यदि स्याज्जीवपितृक एतान्विद्यात्तत पितृन् ॥ इति ।

अत्र कव्यवाल तर्पयामीति, कव्यवालस्तृप्यतु तृप्यतामिति वा प्रयोगः । एवमनलादिषु ।

अथ पित्रादितर्पणे विशेषमाह षोपदेव —

ताताम्यात्रितय सपत्नजननी मातामहादित्रय

सस्त्रि स्त्रीतनयादि तातजननीस्वभ्रातर सस्त्रय ।

ताताम्यात्मभगिन्यपत्यधवयुस् जायापिता सद्गुरु

शिष्याप्ता पितेरो महाल्यविधौ तीर्थे तथा तर्पणे ॥ इति ।

ताताम्यात्रितय, पित्रादित्रय, मात्रादित्रय, मातामहादित्रयम् । सस्त्रीति सपत्नीक तर्पयामीति प्रयोज्यम् । अपत्यधवयुगिति सापत्या सधरा तर्पयामीत्यर्थः ।

श्रमान्तर प्रष्टृके स्मृत्यन्तर—

आदौ पिता ततो माता सपत्नजननी तथा ।

मातामहा सपत्नीका स्वपत्नी तदनन्तरम् ॥

सुतभ्रातृपितृव्याश्च मातुलाश्च सभार्यका ।

दुहिता भगिनी चैव दौहित्रो भगिनेयक ।

पितृष्वसा मातृष्वसा श्वशुरो गुरुरर्धिनः ॥ इति ।

प्रयोगपारिजाते सप्रहे—

पितृमातृमातामहा पितृव्यो भ्रातरः सुत ।

पितृष्वसा मातुलाश्च तद्भगिन्यः स्वभामयः ॥

भार्याभगिन्यो दुहिता श्वशुरो भावुसाः सुपाः ।

श्यालको गुरुराचार्यः स्वामी मित्र यथाक्रमम् ॥ इति ।

स्वभामयः स्वभगिन्यः । भावुसा भगिनीपत्यः । एतेषां च क्रमाणां मैच्छिको विस्तरः ।

तत्र विशेषमाह यम —

सयन्धनामगोत्रेण स्वधान्तेन नमोन्तत ।

वत्सादिरूप निर्दिश्य तर्पयेत्पितृपूवकम् ॥ इति ।

वसिष्ठः—संवन्धमनुकीर्त्यैव नाम गोत्रमनन्तरम् ।

वस्वादिरूपं संकीर्त्य स्वधाकारेण तर्पयेन् ॥ इति ।

अत्रास्मात्पितरममुकशर्माणममुकगोत्रं वसुरूपं स्वधानमस्तर्पयामि इत्यादिप्रयोगः ।

अशक्तौ संक्षेपतर्पणं विष्णुपुराणे—

संक्षिप्ततर्पणम् । आग्रहास्तम्भपर्यन्तं जगत्पृथिविति ध्रुवन् ।

क्षिपेत्तोयाञ्जलींस्त्रीस्त्रीन्दुर्वन्संक्षेपतर्पणम् ॥

अन्यमञ्जलिमाह फाल्गुनायनः—

‘ पितृवंश्या मातृवंश्या ये चान्ये मत्त उदकमर्हन्ति तांस्तर्पयामीत्यवसानाञ्जलिः ’ इति ।

ततः सूर्यायार्घ्यदानमुक्तं विष्णुपुराणे—

दत्त्वा कामोदकं सम्यक् प्रेतेभ्यः श्रद्धयाऽन्वितः ।

आचम्य च ततो दद्यात्सूर्याय सलिलाञ्जलिम् ॥

नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे ।

जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ॥ इति ।

तत आचम्य हस्तस्थान्दुशांस्त्यजेत् । तथाच रत्नावल्याम्—

विकिरे पिण्डदाने च तर्पणे श्राद्धकर्मणि ।

आचान्तः सन्प्रकुर्वीत दर्भसंत्यजनं बुधः ॥ इति ।

तन्मन्त्रोऽपि तत्रैव—

येषां पिता न च भ्राता न पुत्रो नान्यगोत्रिणः ।

ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मयोत्सृष्टैः कुडैस्तथा ॥ इति ।

ततो भूमौ वस्त्रं निष्पीडयेत् । तथाच भरद्वाजः—

वस्त्रोदकमपेक्षन्ते ये मृता दासकर्मिणः ।
वस्त्रनिष्पीडनविधिः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जलं भूमौ निपातयेत् ॥ इति ।

शौनकः—देवादितर्पणं कृत्वा वस्त्रं निष्पीडय शोधयेन् ।

स्नानार्थं प्रस्थितं विप्रं देवाः पितृगणैः सह ॥

वायुरूपेण तिष्ठन्ति तृपितास्ते जलार्थिनः ।

निराशास्तु निवर्तन्ते वस्त्रनिष्पीडने कृतं ।

तस्माज्ज पीडयेद्ब्रह्ममकृते तर्पणे द्विजः ॥ इति ।

अथ भीष्मतर्पणम् ।

व्यास — शुद्धाष्टम्या ॥ माघस्य दद्याद्भीष्माय यो जलम् ।
सर्वत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

तत्राय मन्त्र —

वैयाघ्रपथगोत्राय साकृत्प्रयत्नय च ।
गङ्गापुत्राय भीष्माय प्रदारयेऽहं तिलोदकम् ॥
अपुत्राय ददाम्येतत्सलिलं भीष्मवर्मणे ॥

॥ इति भीष्मतर्पणम् ॥

अथ यमतर्पणम् ।

शृद्धमनु — दीपोत्सर्गचतुर्दश्या वायु तु यमतर्पणम् ।
कृष्णाङ्गारचतुर्दश्यामपि कार्यं सदैव च ॥ इति ।
स एव — इह जन्मकृतं पापमन्यजन्मार्जितं च यत् ।
कृष्णाङ्गारचतुर्दश्या तर्पयस्तस्यपोहति ॥ इति ।

स्मृतिचन्द्रिकायाम् —

यमाय धर्मराजाय मृत्यय चान्तराय च ।
वैरस्यताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥
औदुम्बराय दध्राय नालाय परमश्विने ।
वृषादराय चित्राय चित्रगुप्ताय त नमः ॥
चतुर्दशीत मन्त्रा स्युश्चतुर्ध्वन्ता नमोन्तका ।
एतेन तिलैर्मिश्रास्त्रीन्दीन्दीन्दीन्दीन्दीन् ।
यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

श्लोकार्णवम् —

ग्रामो निहन्ता पित्रधर्मराजो वैरस्वतो दण्डधरश्च कालः ।
प्रेताधिपो दत्तवृत्तानुसारी कृतान्त एतद्दशभिर्जपन्ति ॥ इति ।

दशभि आशुतिभि । व्यास —

तथा कृष्णचतुर्दश्या यमायेत्यादिसप्तभि ।
सप्तोदकाञ्जलीन्दीन्दीन्दीन्दीन्दीन्दीन् ॥

तत्रैव— मन्त्राच्छर्तुं गुणं प्रोक्तं भक्त्या लक्ष्मणोत्तरम् ।
भक्तिमन्त्रसमेतं तु कोटिकोटिगुणोत्तरम् ॥

अथ पञ्चायतनस्थापनप्रकारः ।

ज्ञानमालायाम्—

यदा तु शंकरं मध्ये ईशान्यां श्रीपतिं यजेत् ।
आग्नेय्यां च तथा हंसं नैर्ऋत्यां पार्वतीसुतम् ॥
वायव्यां च सदा पूज्या भवानी भक्तवत्सला ।
यदा तु मध्ये गोविन्दमैशान्यां शंकरं यजेत् ॥
आग्नेय्यां गणनाथं च नैर्ऋत्यां तपनं तथा ।
वायव्यामम्बिकां चैव यजेन्मन्त्री समाहितः ॥
सहस्रांशुं यदा मध्ये ईशान्यां पार्वतीपतिम् ।
आग्नेय्यामेकदन्तं च नैर्ऋत्यामच्युतं तथा ।
वायव्यां पूजयेद्देवीं भोगमोक्षैकभूमिकाम् ॥
भवानीं तु यदा मध्ये ईशान्यां माधवं यजेत् ।
आग्नेय्यां पार्वतीनाथं नैर्ऋत्यां गणनायकम् ।
प्रद्योतनं तु वायव्यामाचार्यस्तु प्रपूजयेत् ॥
हेरम्यं तु यदा मध्ये ईशान्यामच्युतं यजेत् ।
आग्नेय्यां पञ्चवक्त्रं तु नैर्ऋत्यां जगदम्बिकाम् ।
वायव्यां शुमणिं चैव यजेन्मन्त्री ह्यतन्द्रितः ॥
स्वस्थानयर्जिता देवाः शोकदुःखभयप्रदाः ।
तन्मण्डलस्थितो राजा साधकश्च विनश्यति ॥ इति ।

द्यौपदेवः—

शंभौ मध्यगते हरीनहरभूदेव्यो हरौ शंकरे-

भास्ये नागसुता रवौ हरगणेशजाम्बिकाः स्थापिताः ।

देव्यां विष्णुहरैकदन्तरवयो लम्बोदरेऽजेधरे-

नार्याः शंकरभागतोऽतिसुखदा व्यस्तास्तु ते ह्यानिदाः ॥ इति ।

अत्र पञ्चानामप्येकस्यावाहनार्थेन मस्कारान्तं पूजाकाण्डं कृत्वा पर-
स्थापीत्येवं काण्डानुसमयः ।

१ गजवक्त्रं विती क. पाठः । २ माधवं यजेदिति क. पाठः । ३ शुमणिमिति क. पाठः ।
४ जगदम्बां चेति क. पाठः ।

मुख्ये पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा गणेशार्चनं भवेत् ।

गणेश एव मुख्यश्चेत्तत्र सूर्यस्माद्भवेत् ॥

इति वचनेन क्रमाभिधानात् । मुख्ये प्रधानदेवतायाम् । पुष्पाञ्जलिश्च
यदेन च तन्दता पूजा लक्ष्यते, पुष्पाञ्जल्यन्तरं वा विधीयते इति शारदा
तिलकटीकायाम् । युक्तं तु मुख्यत्वोक्त्या तत्प्रतियोगिनाङ्गत्वलाभेन चैक
प्रयोगविधिरूपेण तत्र चैक-कारत्वावगते, वैश्वदेवीं कृत्वा प्राजापत्यैश्चर
न्तीति यत्सर्वेषामाग्राह्यं तत्र स्थापनमिति पदार्थानुसमय एव । स तु
मुख्ये पुष्पाञ्जल्यन्ता पूजा कृत्वाऽङ्गदेवताया पूजाया कार्यं इति दिष्टम् ।

भविष्यत्पुराण—

पुष्पैररुण्यसमूतैः पत्रैर्वा गिरिसमैः ।

अपर्युषितनिशिष्ठैः प्रोक्षितैर्जन्तुवर्जितैः ॥

आत्मारामोद्भवैर्वाऽपि भक्त्या सपूजयेत्सुरान् ॥

कृमिकीटाशपनानि शीर्णपर्युषितानि च ।

स्वयंपतितपुष्पाणि त्यजेदुपहतानि च ॥

उपहतानि मलादिभिः ।

मुकुटैर्नार्चयेद्देवमपणं न निवेदयेत् ।

[फलं च कृमिवद्धं च प्रयत्नात्तद्विवर्जयेत् ॥

अलाभे तु सुपुष्पाणां पत्राण्यपि निवेदयेत् ।]

पत्राणामप्यलाभे तु फलान्यपि निवेदयेत् ॥

फलानामप्यलाभे तु तृणगुल्मौषधीरपि ।

ओषधीनामलाभे तु भक्त्या भवति पूजितम् ॥

प्रत्येकमुक्तपुष्पेण दशसौवर्णिकं फलम् ।

स्रग्जाऽपि नृपशार्दूलं तद्वद्विगुणं भवेत् ॥

विष्णुधर्मोत्तर—

धर्मोर्जितधनमीतैर्यैः कुर्यात्तेश्वार्चनम् ।

उद्धरिष्यत्यसदृशं सप्त पूर्वास्तथा परान् ॥ इति ।

इदं विप्रानिरुद्धपरम् ।

समिष्टपुष्पकुशादीनि ब्राह्मणं स्वयमाहरन् ।

शूद्रानीतैः त्रयक्रीतैः कर्म सुवन्पतत्यथ ॥

स्कान्दे—दक्षिणाभिमुखो भूत्वा तिलान्सन्ध्ये समाहितः ।
देवतीर्धेन देवत्वात्तिलैः प्रेताधिपो यतः ॥

स्मृतिसारे तु—

यज्ञोपवीतिना कार्यं प्राचीनावीतिनाऽपि वा ।
देवत्वं च पितृत्वं च यमस्याऽपि द्विरूपता ॥

॥ इति यमतर्पणम् ॥

अथ तर्पणे तिष्ठनिषेधः ।

संप्रहे— नन्दायां भार्गवदिने कृत्तिकासु मघासु च ।
भरण्यां भानुवारे च गजच्छायाह्वये तथा ॥
अयनद्वितये चैव मन्वादिषु युगादिषु ।
पिण्डदानं मृदास्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥

मरीचिः—सप्तम्यां रविवारे च गृहे जन्मदिने तथा ।
मृत्युपुत्रकलत्रार्थी न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥

घौषायनः—सप्तम्यां रविवारे च मातापित्रोः क्षयेऽर्हति ।
तिलैर्यस्तर्पणं कुर्यात्स भवेत्पितृघातकः ॥

सप्तमीरविविशिष्टं निमित्तमिति केचित् सप्त, विशेषणविशेष्यभावे
विनिगमनाविग्रहात् । पर्यञ्चित्तत्सत्त्वेऽपि निमित्तविशेषणमविनक्षिप्तमेव ।
“यस्योभयं हविरार्तिमाच्छेत्” इत्यत्रेवोभयत्वं, सप्तमीरविगृहजन्मदिना-
नामन्येषामपि परस्परविशिष्टानामेव निमित्ततापत्तेश्च अभिकारविशेष-
श्रुतेश्च मृत्युपुत्रादिकामस्त्येवायं निषेधः न ॥ विधुरापुत्रादेः ।

स्मृत्यन्तरं—पिण्डदानं मृदास्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ।

पिण्डदानं मृदास्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ इति ।

घौषायनः—विशादे घोषनयने चौले सति यथाक्रमम् ।

यर्षमर्थं तदर्थं च नेत्येके तिलतर्पणम् ॥

संस्कारेषु तथान्येषु जातपुंसयनादिषु ।

यावन्मासः समाप्येत तावत्पिण्डांश्च यजेत् ॥

मृदायनन्तरं प्राशस्त्यैव तिलतर्पणम् ॥ इति ।

वृद्धमनु — सत्रान्त्यादिनिमित्तेषु स्नानाङ्गे तर्पणे तथा ।
निष्प्रतिग्रन्थ । तिथिवारनिषेधेऽपि तिलैस्तर्पणमाचरेत् ॥ इति ।

कात्यायन — उपरागे पितुःश्राद्धे पातेऽमाया च सक्रमे ।
निषेधेऽपि हि सर्वत्र तिलैस्तर्पणमाचरेत् ॥ इति ।

व्यतीपातो वैधृते, पिता च पितृव्यादेरुपलक्षणम् । सत्रातिरयनमि-
त्रेति पारिजाते ।

॥ इति तर्पणप्रकरणम् ॥

अथ देवपूजा ।

कूर्मपुराणे—ब्रह्माण शकर सूर्य तथैव मधुसूदनम् ।
अन्याश्चाभिमतान्देवान्भक्त्या त्वहोवनो नर ।
स्वैमन्त्रैस्त्वर्चयेन्नित्यं पत्रैः पुष्पैस्तथाम्बुभिः ॥

गन्धपुष्पमात्रं पञ्चोपचाराद्यसम्भवं इति नियतत्वे ।

नृसिंहपुराणे—

जलदेधं नमस्कृत्य ततो गच्छेद्गृहं शुभ ।
पौरुषेण च सूक्तेन ततो विष्णुं समर्चयेत् ॥ इति ।

रसान्दे— ब्रह्मा कृतयुगे देवत्वेताया भगवान् रविः ।
द्वापरे भगवान्विष्णुः कलौ देवो महेश्वरः ॥ इति ।

[नियमविधिरयं न तु परिसरया । एव सर्वेषु सर्वेषां पूज्यत्वं न
निश्चितम् ।

तथाच महाभारते—

कलौ कलिप्रलम्बसः सर्वपापहरं हरिम् ।
येऽर्चयन्ति नरा नित्यं तेऽपि बन्धा यथा हरिः ॥]

मन्त्रा वैदिका नाममन्त्राश्च । अत एव ब्राह्मे—

ओङ्कारादिऋसयुक्तं नमस्कारान्तसयुतम् ।
स्वनाम सर्वसत्त्वानां भग्न इत्यभिधीयते ॥

अनेनैव विद्वानेन गन्धपुष्पे निवेदयेत् ।

एतैरस्य प्रकुर्वीत यथोदिष्टक्रमेण तु ॥ इति ।

इति भविष्ये ब्राह्मणग्रहणात् इति भ्रातृचरणाः । लक्षपुष्पार्चनादौ
 तु कृत्यक्रीतमपि देयमिति मन्त्रकोशकारः ।

समित्पुष्पकुशादीनि वहन्तं नाभिवादयेत् ।

तद्वारी चैव नान्यान्हि निर्माल्यं तद्ववेत्तयोः ॥

तथा— देवोपरि धृतं यच्च वामहस्ते धृतं च यत् ।

अधोवस्त्रधृतं यच्च जलेऽन्तः क्षालितं च यत् ।

देवतास्तत्र गृह्णन्ति पुष्पं निर्माल्यतां गतम् ॥ इति ।

नित्यपूजार्थं परोपवनादेरपि ब्राह्मम् । न च तथौर्यम् ।

देवतार्थं च कुसुममस्तेयं मनुरग्रवीत् ।

इति वचनात् । पूजार्थं पुष्पादि न याचेत ।

याचितैः पत्रपुष्पाद्यैर्यः करोति ममार्चनम् ।

इति धाराहे तस्यापराधिषु गणितत्वात् ।

भविष्यत्पुराणे—

प्रहरं तिष्ठते जाती करवीरमहर्निशम् ।

तुलस्यां विल्वपत्रेषु जलजेषु च सर्वशः ॥

न पर्युषितदोषोऽस्ति मालाकारगृहेषु च ।

मुद्गराणि कदम्बानि रात्रौ देयानि भास्करं ॥

कनकानि कदम्बानि रात्रौ देयानि शंकरं ।

दिवा चान्यानि पुष्पाणि दिवा रात्रौ च मल्लिकाः ॥

तत्रैव— जाती शमी कुशाः कङ्कु मल्लिकाः करवीरजम् ।

नागपुत्रागकाशोकरत्तनीलोत्पलानि च ॥

चम्पकं यशुलं चैव पद्मं विल्वं पवित्रकम् ।

एतानि सर्वदेवानां विहितानि समानि च ॥

कङ्कु कुटजकम् । नागो नागकेशरम् ।

पाटला च शमीपत्रं दुर्गायास्तु हिताहितम् ।

विहितं प्रतिपिद्धं चेत्यर्थः ।

कुन्दं पलाशकुसुमं दूर्वा च शिवपूजने ।

कुमुदं कुङ्कुमं श्रोणं तगरं सूर्यपूजने ॥

विहितनिषिद्धमित्यर्थः । कुङ्कुममत्र पुष्पम् ।

अवकः कर्णिकारस्तु किङ्किरातो हरेस्तया ।

किङ्किरातः पीनाप्रकः ।

तिलकं मालती वाणस्तुलसी मृङ्गराजरुम् ।
तमालं शिवदुर्गार्थं निषिद्धं विहितं भवेत् ।

चाणः करस(म)ला इति प्रसिद्धः ।

जयः काशः श्वेतपद्मं श्वेतमन्दारकं तथा ।
दुर्गायाश्चैव विष्णोश्च निषिद्धं विहितं भवेत् ॥

जयो जयन्ती ।

अगस्तिरतिमुक्तश्च तिरीटं च हरे हरौ ।
अपामार्गस्य पुष्पं च दुर्गायाश्च हिताहितम् ॥

अतिमुक्तो माधवीलता । तिरीटं लोघ्रम् ।
धत्तूरं शिशपापुष्पं मन्दारश्चापराजिता ।
सूर्यविष्णोर्न विहितं दमनं शिवसूर्ययोः ॥

अथ शिवं निषिद्धानि—

केतकी चातिमुक्तश्च शुन्दो यूथो मदन्तिका ।
शिरीषसर्जम्भूक्तुमुमानि विवर्जयेत् ॥
अङ्गोल्यप्रमुमं करजेन्द्रवरुद्रवम् ।

सर्जः शालः । इन्द्रवरुः सिन्धुवारः ।

शिवे विवर्जयेत्सुन्दमुन्मत्तं च तथा हरौ ।
देवीनामर्चमन्दारौ सूर्यस्य तगरं तथा ॥ इति ।

विष्णुः । अर्कनिषेधो दुर्गेतरदेवीविषयः, दुर्गापूजाधिकारे करवीरा-
र्कपुष्पैरित्युक्तत्वात् ।

विष्णौ तु, विष्णुः—नोपगन्धीनि नागन्धीनि पुष्पाणि न फण्ट-
कितम् । फण्टकितमपि शुक्लसुगन्ध्यमपि दद्यात् । न रक्तं दद्यात् ।
रक्तमपि शुक्लमुममं जलजं च दद्यात् । अजलजमपि पाटलानि संध्याक-
रवीरपारिभद्रशमीपत्रपलाशाशोरुशवर्ज्यं न दद्यात् ।

विष्णुधर्मोत्तरे—‘कुटजशाल्मलीपुष्पं शैरीषं शकचं धत्तूरं कृष्णपुष्पाकं
च विष्णौ निषिद्धम् ।’

नृसिंहपुराणे—माला योग्यताराहित्ये सति निर्माल्यं भवतीत्युक्तं,
तुलसीचन्दनादीनां च न निर्माल्यतेत्युक्तं, तेन प्रातःकालेऽप्यपनयने न
दोषः ।

अथ विहितानि ।

तत्र सूर्यस्य भविष्यपुराणे—

मालती मल्लिका चैव दूर्वा कशोऽतिमुक्तकः ।
पादलाकरवीराणि जपा जयन्तिरेव च ॥
चम्पको रेतकः कन्दो वाणो वर्वरमल्लिका ।
अशोककर्णिकारौ च तथैव चाटरूपकः ॥
शतपत्राणि चान्यानि वकुलं च विशेषतः ।
अगस्तिकिञ्चुकौ तद्रूपजार्थं भास्करस्य च ॥

विहितानीति शेषः ।

अथ पत्राणि ।

यित्वपत्रं शमीपत्रं मृङ्गराजस्य पत्रकम् ।
तमालपत्रं च हरेः सद्यस्तुष्टिकरं रवेः ॥
तुलसी कालतुलसी तथा रक्तं च चन्दनम् ।
केतकीपत्रकुमुदं सदैव तपनप्रियम् ॥

अथ शिवे ।

करवीरो धकधैव अर्कं उन्मत्तकस्तथा ।
पादला वृहती चैव तथा च गिरिकर्णिका ॥
तथा काशस्य पुष्पाणि मन्दारध्वापराजिता ।
शमीपुष्पाणि चान्यानि कुटजकं शिखिनी तथा ॥
अफामार्गस्तथा पद्मं शमीपत्रं सरोचकम् ।
चम्पकोदीरतगरं तथा वै नागकेसरम् ॥
पुन्नागं किङ्किरातं च द्रोणपुष्पं तथा शुभम् ।
शिंशपोदुम्बरधैव जपा मल्ली तथैव च ॥
पुष्पाणि यक्षशृङ्गस्य तथा यित्वं प्रियं शुभे ।
कुङ्कुमस्य च पुष्पाणि तथा वैरुद्धतस्य च ॥
नीलं च कुमुदं चैव तथा रघोत्पलानि च ।
गुरमीणि च सर्गाणि स्थलजान्यादिकानि च ।

गृह्णामि शिरसा देवि यो मे भक्त्या निवेदयेत् ॥

शिरिणी मयूरशिखा ।

नीलोत्पलसहस्रस्य यो माला सप्रयच्छति ।

शिखाय विधिमद्रक्तया तस्य पुण्यफलं शृणु ॥

फलफोटिसहस्राणि फलफोटिशतानि च ।

वसेच्छिवपुरे श्रीमान्निशवतुल्यपराक्रम ॥

अर्नेकरवीरधत्तूरादिपुष्पदानफलं न लिखितं अन्यगौरवभयात् ।
सामान्यफलं शिवलोफप्राप्तिः ।

अथ दुर्गायाः ।

देवीपुराणे—शृणु शुक्र प्रक्ष्यामि पुष्पाध्याय समासत ।

अतुकालोद्भवैः पुष्पैर्महिराजातिपुष्पकैः ॥

सितरक्तैस्तथा पुष्पैः पद्मैश्च पाण्डुरैस्तथा ।

विंशतैस्तगैश्चैव किट्टिरातैः सचम्पकैः ॥

वकुलैश्चैव मन्दारैः कुन्दपुष्पैस्तिरीटकैः ।

करवीरार्कपुष्पैश्च शैशिषैश्चापराजितैः ॥

सितरक्तैस्तथा धीतैः कृष्णैश्चैव चतुर्विधैः ।

धत्तूरपादिपुष्पैश्च बन्धूकागस्तिसमवैः ॥

मदनैः सिन्धुवारैश्च मुरभिः कु(भिम् ?)रयकैस्तथा ।

लताभिर्महावृक्षस्य दूर्वाकन्दैः सुशोभनैः ॥

मञ्जरीभिः पुशाना च विल्वपत्रैः सुशोभनैः ।

रत्नान्वितैस्तथा सर्वमलजैः स्थलसंभवैः ॥

पत्रैः पुष्पैर्वेद्यान्याय सर्वोपधिमयैः शुभैः ।

धान्यानां सर्पपत्रैश्च पुष्पैश्चैव प्रपूजयेत् ॥

विल्वपत्रैः पूजने राजसूयफलम् । करवीरस्रजा अग्निशोमफलम् । वकु-
लस्रजा वाजपेयफलम् । श्रेणम्रजा राजसूयफलम् । एवमन्यम् ।

अथ विष्णोः । नरसिंहपुराणे—

मद्विवा मालती जाती वेतस्याऽऽशोकचम्पकैः ।

पुष्पागनागवकुलैः पद्मैस्तत्पलादिभिः ।

पतैरन्यैश्च कुमुदैः प्रदास्त पूजनं हर ॥

व्यासपुराणे—आतीः शतपदाः सुमगाः कुन्दः चान्यदुपुष्पाः ।

घ्राणं च चम्पकाशोकं करवीरं च यूथिका ॥
 पारिभद्रं पाटला च वकुलं गिरिशालिनी ।
 तिलकं जासुवनजं पीतजं तगरं त्वपि ॥
 एतानि हि प्रशस्तानि कुसमान्यच्युतार्चने ।
 सुरभीणि तथान्यानि वर्जयित्वा तु केतकीम् ।

केतकीं धत्तूरमिति केचिन् । वनकेतकीत्यपरे । शताहाऽशोक इति
 प्रसिद्धः । सुमनाः सुवर्णजातिः । अम्बुपुटः कर्णिकारः । जासुवनजं
 जपा । गिरिशालिनी श्वेतकुटजम् ।

अथ पत्राणि ।

अपामार्गस्य प्रथमं मृद्धराजमतः परम् ।
 तस्माच्च खादिरं श्रेष्ठं शमीपत्रं ततः परम् ॥
 दूर्वापत्रं तथा श्रेष्ठं ततोऽपि कुशपत्रकम् ।
 तस्माद्दमनकं श्रेष्ठं ततो विल्वस्य पत्रकम् ॥
 विल्वपत्रादपि हरेस्तुलसीपत्रमुत्तमम् ।
 एतेषां तु यथा लाभं पत्रैर्व्यञ्जयेद्वरिम् ॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥

नैरसिंहपुराणे—

कृष्णमूर्धनि विन्यस्ता तुलसीपत्रमश्वरी ।
 सुवर्णकोटिपुण्यानां पुण्यं यच्छत्यतोऽधिकम् ॥

तुलसीरोपणमन्त्रः—

महाप्रसादजननी सर्वसौभाग्यवर्धिनी ।
 आधिपत्याधिहरा नित्यं तुलसि त्वं नमोऽस्तु ते ॥
 द्रोणपुष्पे तथैकस्मिन्सावकाय निवेदिते ।
 दश दत्त्वा सुवर्णानि तत्फलं लभते नरः ॥
 अगस्तिकुमुभैर्देवं योऽर्चयेत् जनार्दनम् ।
 दर्शनात्तस्य देवर्षे नरकान्धो नु यास्यति ।
 द्रोणपुष्पं खादिरं च शमीविल्वयकं तथा ॥

पत्रं पशुनम् ।

नन्द्यार्तं करवीरं तथा श्वेतं च किंशुकम् ।

कुशपुष्प तमाल च चम्पकाशोकेकेतकी ॥
 त्रिसन्ध्य मालतीपुष्प त्रिसन्ध्य श्वेतजा तु या ।
 हुन्द च शतपुष्प च मल्लिकार्जुनपुष्पकम् ।
 पूर्वपूर्वसहस्रेभ्योऽधिकं स्यादुत्तरोत्तरम् ॥
 जातीपुष्पसहस्रेण यच्छेन्माला सुशोभनाम् ।
 विष्णवे विधिवद्भक्त्या तस्य पुष्पफलं शृणु ॥
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
 वसेद्विष्णुपुरे श्रीमान्विष्णुस्तुल्यपराक्रम ॥
 मन्थरी सहकारस्य केशवोपरि नारद ।
 यच्छन्ति ते महात्मानो गोकोटिफलभागिन ॥
 पुरन्धिपुष्प यो दद्यादेकमप्यय पण्डित ।
 तिलपात्रप्रदानस्य फलमाप्नोत्यसंशयम् ॥

पुरन्धि पूर्वदेशे 'पङ्क्तु' इति प्रसिद्धा ।

॥ इति पुष्पाध्याय ॥

अथ पूजायतनानि ।

अग्निपुराणे—अप्स्वप्रौ हृदये सूर्ये स्थण्डिले प्रतिमासु ३ ।
 पदस्येतेषु हरं सम्यगर्चनं मुनिभिः स्मृतम् ॥
 स्कान्द— कामासक्तोऽथवा क्रुद्धः शालग्रामशिलार्चनाम् ।
 भक्त्या न यदि वाऽभक्त्या बलौ मुक्तिमवाप्नुयान् ॥
 वैवस्वतभय नास्ति तथाच कलिकालजम् ।
 यः कथां कुरुते विष्णा शालग्रामशिलाप्रतः ॥
 शालग्रामशिलायास्तु प्रतिष्ठा नैव विद्यते ।
 महापूजा तु कृत्वादौ पूजयेत्ता ततो बुधः ॥ इति ।

शिवायतनं भारते—

सदा च यजते यस्तु अद्वया मुनिपुंगव ।
 लिङ्गे वा स्थण्डिले वाऽपि शकरं विनिर्पूर्वकम् ।
 युगदोषं विनिर्जित्य रुद्रलोकं प्रमादतः ॥ इति ।

भविष्ये—वाणलिङ्गानि राजेन्द्र ख्यातानि भुवनेषु ।

न प्रतिष्ठा न संस्कारस्तेषामावाहनं तथा ॥ इति ।

हेमाद्री—ब्राह्मणैर्वासुदेवस्तु नृपैः सत्कर्षणस्तथा ।

प्रद्युम्नः पूज्यते वैश्यैरनिरुद्धस्तु, शुद्रजैः ॥ इति ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

पञ्चवक्त्रो वासुदेवः पद्भिः प्रद्युम्नकः स्मृतः ।

संकर्षणः सप्तवक्त्रोऽनिरुद्ध एकादशैः स्मृतः ॥

चत्वारो ब्राह्मणैः पूज्यास्त्रयो राजन्यजातिभिः ।

वैश्यैर्द्वावेव संपूज्यौ तथैकः शुद्रजातिभिः ॥ इति ।

यत्तु स्मृत्यन्तरे—

एकमूर्तिर्न पूज्यैव गृहिणा भूतिमिच्छता ।

अनेकमूर्तिसंपन्नः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥

तत्काम्यपूजापरं त्रैवर्णिकपरं वा, शुद्रस्यैकविधानात् ।

यदपि— शालग्रामाः समाः पूज्या [विष्णो न कदाचन ।

समेषु द्वितयं नेष्टं विषमेष्वेकमेव हि ॥ इति ।

तत्र पादत्रयं विप्रपरं, तत्राप्याद्यार्धं चत्वारो ब्राह्मणैः पूज्याः] इत्य-
स्यैवार्यमतुवदति । तृतीयपादस्तु अनेकमूर्तिसंपन्न इत्यनेकताप्राप्तौ द्वयो-
र्निषेधकम् । अन्त्यपादस्तु शुद्रपरः ।

यत्तु विष्णुधर्मोत्तरे—

शालग्रामशिलां वापि चक्राङ्कितशिलां वथा ।

ब्राह्मणः पूजयेन्नित्यं क्षत्रियादिर्न पूजयेत् ॥

तत्क्षत्रियादिरादिर्यस्येति मध्यमपदलोपिवहुग्रीहिगर्भेण तद्गुणसंविज्ञा-
नयहुग्रीहिणा शुद्रपरम् । तथाचापस्तम्भः—

ग्रन्थोच्चारणाच्चैव शालग्रामशिलार्चनान् ।

ब्राह्मणीगमनाच्चाऽपि शुद्राण्डालनां ग्रजेन् ॥

एतदपि शुद्रस्य स्पर्शसहितपूजानिषेधार्थम् ।

ब्राह्मणस्यैव पूज्योऽहं शुचेरप्यशुचेरपि ।

स्त्रीशुद्रकरसंस्पर्शो वयस्पर्शाधिको मम ॥ इति लैङ्गोक्तेः ।

स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च नराधिप ।

स्पर्शमे नतिष्कारोऽस्ति विष्णोर्वा शंकरस्य च ॥ इति ।

शूद्रो वाऽनुपनीतो वा स्त्रीवाऽपि पतिगोऽप्यवा ।

केदारं वा शिवं वापि शूद्रा नरकमश्नुते ॥

इति च कृद्भारदीयाचेति भट्टचरणाः । स्त्रीशूद्रयोः साक्षात्पूजा-
निषेधकमिति तु युक्तम् । अत एव पाद्ये—

ब्राह्मणक्षत्रवैश्याना त्रयाणा मुनिसत्तम ।
अधिकारः स्मृतः सद्भिः शालग्रामशिलार्चने ॥
स्त्रीशूद्रपतितादीना षण्ढादीना विकर्मणाम् ।
नैवाधिकारो विज्ञेयः शालग्रामशिलार्चने ॥
दीक्षायुचैस्तथा शूद्रैर्मद्यपानविवर्जितैः ।
कर्तव्यं ब्राह्मणद्वारा शालग्रामशिलार्चनम् ॥ इति ।

तत्रैव— द्वारकाशैलसंभूतं यस्तोर्य पित्रे कलौ ।
पापानि तस्य नश्यन्ति शतजन्मार्जितान्यपि ॥
धृते शिरसि पीते च सर्वास्तुप्यन्ति देवता ।
प्रायश्चित्तं हि पापाना कलौ पादोदकं हरेः ॥ इति ।

शिलैव शैलं स्वार्थेऽण् । द्वारकाशिलातोयपानविधेः सापि शाल-
ग्रामेण सह पूज्येति केचित् । ततोयपानमात्रं पूजाया तु मानाभाव
इत्यपरे ।

अथ विष्णोर्गन्धपुष्पादि विष्णुधर्मोत्तरे—

कलौ यच्छन्ति ये विष्णोस्तुलसीकाष्ठचन्दनम् ।
विष्णुप्रीतिकरं मर्त्या उत्तरा यान्ति ते भुवम् ॥
योऽर्चयेन्मालतीपुष्पैर्न भूय स्तनपो भवेत् ।
अहो मुष्टास्ते नष्टास्ते पतिताः फलिकन्दरे ।
यैर्नार्चितो हरिर्भक्त्या कमलैरसितैः सितैः ॥ इति ।

पाद्ये— कार्तिके नैतकीपुष्पं येन दत्तं हरेः कलौ ।
दीपदानं च देवेषु तारितं तेन वै कुलम् ॥ इति ।

अथ पूजेतिकर्तव्यता आग्नेयपुराणे—

अर्चनं संप्रवक्ष्यामि विष्णोरमिततजसम् ।
यत्कृत्वा मुनयः सर्वे परं निर्वाणमाप्नुयुः ॥
आनुष्टुभस्य सूक्तस्य त्रिष्टुप्चतस्य देवता ।
पुरुषो यो जगद्धीजं ऋषिर्नारायणः स्मृतः ॥
प्रथमा विन्यसेद्दामे द्वितीया दक्षिणे करे ।
चतुर्थी चामपदे च चतुर्थी दक्षिणे न्यसेत् ॥
पञ्चमी वामजानौ च षष्ठी वै दक्षिणे न्यसेत् ॥

सप्तमीं वामकट्यां तु अष्टमीं दक्षिणे तथा ॥
 नवमीं नाभिमध्ये तु दशमीं हृदये तथा ।
 एकादशीं कण्ठमध्ये द्वादशीं वामबाहुके ॥
 त्रयोदशीं दक्षिणे ॥ तथैवास्ये चतुर्दशीम् ।
 अक्षणोः पञ्चदशीं चैव विन्यसेन्मूर्ध्नि षोडशीम् ॥
 यथा देहे तथा देवे न्यासं कृत्वा यथाविधि ।
 न्यासेन ॥ भवेत्सोऽपि स्वयमेव जनार्दनः ॥
 एवं न्यासविधिं कृत्वा पश्चात्पूजां समाचरेत् ।
 पूर्वमावाहयेद्देवमासनं तु द्वितीयया ॥
 पाद्यं तृतीयया चैव चतुर्थ्याऽर्घ्यं प्रदापयेत् ।
 पञ्चम्याऽऽचमनं दद्यात्पष्ठया स्नानं समाचरेत् ॥
 सप्तम्या तु ततो वासोऽप्यष्टम्या चोपवीतकम् ।
 नवम्या चन्दनं दद्याद्दशम्या पुष्पमेव च ॥
 एकादश्या तथा धूपं द्वादश्या दीपमेव हि ।
 नैवेद्यं तु त्रयोदश्या नमस्कारे चतुर्दशी ।
 प्रदक्षिणे पञ्चदशी वर्जने षोडशी तथा ॥

वर्जने विसर्जने ।

स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनं तथा ।
 हुत्वा षोडशभिर्मन्त्रैः षोडशान्नस्य चाहुतीः ॥
 पुनः षोडशभिर्मन्त्रैर्दद्यात्पुष्पाणि षोडश ।
 तच्च सर्वं जपेद्भूयः पौरुषं सूक्तमेव च ।
 पण्मासात्सिद्धिमाप्नोति ह्येवमेव समर्चयेत् ॥ इति ।

यत्तु भागवते—

उद्गासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ।
 अस्थिरायां विकल्पः स्यात्स्यण्डिले च भवेद्द्वयम् ॥ इति ।

यदपि स्कान्दे—

शालग्रामार्चने नैव आवाहनविसर्जने ।

शालग्रामे हि भगवान् समुद्भूतः सदा हरिः ॥

इत्यावाहनविसर्जने निषिद्धे तत्र तदुचो विनियोगो मन्त्रराजविशौ—

आवाहनऋचा दद्यात्पूर्वं पुष्पाञ्जलिं हरेः ।

तस्यैवोन्मुखताप्राप्त्यै यागे चोद्गासने ऋचा ।

अन्ते पुष्पाखलि दद्याद्यागसपूर्तिसिद्धये ॥ इति ।

तत्रैव— प्रतिभापट्टयन्त्राणा नित्य स्नान न कारयेत् ।

कारयेत्पर्वदिवसे यथा मलनिवारणम् ॥ इति ।

वस्त्रमपि न प्रत्यह नियमेन नूतनमेव समर्पणीयम् ।

वस्त्रमभ्युक्षणाच्छुद्धेदपर तु दिने दिने ।

इति उत्तवसागरोचे । अपर पुष्पादि ।

तत्रैव—यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठन्ति देवता ।

न निर्मास्य भवेत्तावत्स्वर्णरूपविभूषणम् ॥ इति ।

बौधायन—‘अथातो’ [महादेवस्या] ऽहरह परिचर्याविधिं व्याख्यास्याम । स्नात्वा शुचौ देशे गोमयेनोपलिप्य प्रतिष्ठति कृत्वाक्षतगुप्पैर्यथा लाभमर्चयेत् । सहपुष्पोदकेन महादेवमावाहयेत् ॐ भू महादेव मावाहयामि, ॐ भुव महादेवमावाहयामि, ॐ स्व महादेवमावाहयामि, इत्याद्याह्य आयातु भगवान् महादेव इत्यथ स्वागतेनाभिनन्दति । स्वागतमनुना स्वागत भगवते महादेवाय तत्स्वासन ऋक्षगमास्ताम् भगवान् महादेव इत्यत्र कूर्चं ददाति भगवतोऽय कूर्चो दर्भमयस्त्रिष्टुप्तरित सुवर्णस्त जुषवेति । अत्र स्थानानि कल्पयामि । अग्रतो प्रक्षणे कल्पयामि दक्षिणत स्कन्दाय कल्पयामि विनायकाय कल्पयामि पश्चिमत । स्थूलाय कल्पयाम्युत्तरत उमायै कल्पयामि नन्दिकेश्वराय कल्पयामीति कल्पयित्वाथ सावित्र्या पात्रमभिमन्य प्रक्षाल्य त्रिरप पवित्रमप्य आनीय सहपवित्रेणादित्य दर्शयेत् । ॐ श्रुतमिति स्नानम् । ॐ स्वरिति रुद्रेण पाद्य दद्यात् । प्रणवेनाहर्षम् । अथ व्याहृतिभिर्निर्मास्य व्यपोहोत्तरतश्चण्डाय नम इत्यथैन स्नापयित्वा “आपोहिष्ठा भयो भुव ” इति तिसृभिः “ हिरण्यवर्णा शुचय पावका ” इति चतसृभिः “ पवमान सुवर्जन ” इत्येतेनानुवाकेन स्नापयित्वाऽग्निस्तर्पयति । भव देव तर्पयामि । शर्व देव तर्पयामि । ईशान देव तर्पयामि । पशुपति देव तर्पयामि । रुद्र देव तर्पयामि । उग्र देव तर्पयामि । भीम देव तर्पयामि । महान्त देव तर्पयामि । इति तर्पयित्वाऽयैतानि वस्त्रयशोपवीतान्याचमनीयान्युदकेन व्याहृतिभिर्दत्त्वा व्याहृतिभिः प्रदक्षिणमुदक परिपिच्य “ नमस्ते रुद्रमन्यव ” इति गन्ध दद्यात् । “ सहस्राणि सहस्रश ”

इति पुष्पं दद्यात् । “ईशानं त्वा भुवनानामधिश्चियम्” इति चाक्षतान्दद्यात् । सावित्र्या धूपं, उद्दीप्यस्वेति दीपं, “देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्” भगवते महादेवाय जुष्टं चरुं निवेदयामीति नैवेद्यम् । अथाष्टभिर्नामधेयैरष्टौ पुष्पाणि दद्यात् । भवाय देवाय नमः । शर्वाय देवाय नमः । ईशानाय देवाय नमः । पशुपतये रुद्राय उग्राय देवाय नमः । भीमाय देवाय नमः । महते देवाय नमो ब्रह्मणे नमो विष्णवे नमः । स्कन्दाय नमः । [पिनाकाय नमः । शूराय शूराय महाकालाय तन्दिकेश्वराय नमः । इति चरुशेषेणाऽष्टाभिर्नामधेयैरष्टाहुतीर्जु-
होति । भवाय देवाय स्वाहेत्यष्टाभिर्हुत्वाऽथ शिष्टैर्गन्धमात्यैर्ग्राह्यणानलं-
कृत्याथैनमृग्यजुःसामभिः स्तुवन्ति “सहस्राणि सहस्रशः” इत्यनुवाकं
अपित्वा अन्यांश्च रौद्रान्मन्त्रान्यथाशक्त्या एकैकं भूर्भुवःस्वर्महरां
भगवते महादेवाय च । रुद्रस्योद्भासकाले ॐ महादेवमुद्भासयामीति
रुद्रमुद्भास्य ।]

प्रयातु भगवानीशः सर्वलोकनमस्कृतः ।

अनेन हविषा तृप्तः पुनरागमनाय च ।

पुनः संदर्शनाय च । इति प्रतिमास्थानेषु अप्सवप्रावाहनविसर्जनवर्जं
सर्वं समानम् । महत्स्वत्ययनमाचक्षते इत्याह भगवान् बौधायनः इति ।

कौमै— न विष्ण्वाराधनात्पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम् ।

तस्मादनादिमध्यान्तं नित्यमाराधयेद्धरिम् ॥

अथवा देवमीशानं भगवन्तं सनातनम् ।

आराधयेन्महादेवं भावपूतो महेश्वरम् ।

मन्त्रेण रुद्रगायत्र्या प्रणवेनाथवा पुनः ॥

रुद्रगायत्री “तत्पुरुषाय विद्महे” इत्याद्या ।

ईशानेनाथवा रुद्रं त्र्यम्बकेन समाहितः ।

पुष्पैः पत्रैरथाद्रिर्वा चन्दनाच्चैर्महेश्वरम् ॥

तथोनमः शिवायेति मन्त्रेणानेन वा यजेत् ।

नमस्तुभ्योन्महादेवं ऋतं सत्यमितीश्वरम् ॥

नित्येदं प्रीतुं चतुष्टयं यो ग्राह्यमिति शङ्करः ।

प्रदक्षिणं द्विजः कुर्यात्पञ्च ब्रह्माणि वा जपेत् ।

ध्यायीत देवमीशानं व्योममध्यागतं शिवम् ॥ इति ।

स्कान्दे—अग्राहां शिवनिर्मात्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
शालग्रामस्य संसर्गात् सर्वं याति पवित्रताम् ॥ इति ।

कौमें—यो मोहादयवाऽऽलस्यादकृत्वा देवतार्चनम् ।
मुह्येके स याति नरकं सूकरेष्वभिजायते ॥ इति ।

शिववाक्यं स्कान्दे—

विप्रस्य तु सदैवाहं शुचैरप्यशुचैरपि ।
गृह्णन्वलिं प्रहृष्यामि विप्राणां भिन्न दर्शनात् ॥

वलिं पूजाम् ।

तथा—शुद्धः कर्माणि यो नित्यं स्वीयानि कुरुते प्रिये ।
तस्याहमर्चा गृह्णामि चन्द्रलण्डविभूपितं ॥

तथा—नमोन्तेन शिवेनैव स्त्रीणां पूजा विधीयते ।
एवकारः प्रणवपरिसंख्यार्यः । तथा नृसिंहतापनीये—‘सावित्रीं प्रणवं
यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्राय नेच्छन्ति’ ।

भविष्येऽपि—स्वाहा प्रणवसंयुक्तं शुद्धे मन्त्रं ददहिजः ।
शुद्धो नरकमाप्नोति श्राद्धणः शुद्धतामियात् ॥

रुद्रयामले—न प्राचीमप्रतः शंभोर्नोदीचीं शक्तिसंश्रिताम् ।
न प्रतीचीं यतः पृष्ठमतो दक्षं समाश्रयेत् ॥

पूजकः शंभोः पूजार्थं प्राचीमवस्थितयेन समाश्रयेत्, पश्चवक्पक्षे
यतः संहारकं वर्षं प्राच्यामवस्थितम् । एकवक्पक्षे ॥ सुतराम् । शक्ति-
देवी, दक्षं दक्षिणाम्, इदं वचनं सूर्योपलक्षितदिग्विषयमेव । वक्ष्यमाणा
आवरणपूजाऽप्येतदनुसारेणैव । पूज्यपूज्यकान्तःप्राच्यास्तु नायं विषयः
बाधात् ।

लिङ्गपुराणे—विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया ।
पूजितोऽपि महादेवो न तस्य स्यात्फलप्रदः ॥
तस्मान्मृदाऽपि कर्तव्यं ललाटेऽपि त्रिपुण्ड्रम् ॥

संवत्सरप्रदीपे—

त्रिपुरस्य वधे काले रुद्रस्याक्षोर्यतः सुता ।
अश्रूणां शिन्दवस्ते तु रुद्राक्षा ह्यभवन् मुनि ॥

स्कान्दे—पश्चवक्पक्षः स्वयं रुद्रः कालाभिर्नाम नामतः ।

अगम्यागमनाच्चैव अमदयस्य च भक्षणात् ।

मुच्यते सर्वपापेभ्यः पञ्चवक्त्रस्य धारणात् ॥

ॐ नम इति प्रत्येकमष्टोत्तरशतं जप्त्वा शीतान्मसा प्रक्षाल्य धारणीयम् ।

विना मन्त्रेण यो घृते रुद्राक्षं भुवि मानवः ।

स याति नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ इति सत्रैवोक्तेः ।

[धोपदेवः—

रुद्राक्षान्कण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे

पदपद कर्णप्रदेशे करयुगलकृते एकमेकं शिलायाम् ।

वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः]

अथ पार्थिवपूजा नन्दिपुराणे—

आयुष्मान्वलवान्श्रीमान्पुत्रवान्धनवान्सुखी ।

धरमिष्टं लभेद्भिङ्गं पार्थिवं यः समर्चयेत् ।

तस्मात्तु पार्थिवं लिङ्गं ज्ञेयं सर्वार्थसाधकम् ॥

भविष्ये—मृदस्मनोः शकृत्पिण्डं ताम्रकांस्यमयं तथा ।

कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्यं वसेत्कल्यायुषं दिवि ॥

राज्यवित्तप्रदं लिङ्गं स्फाटिकं सर्वकामदम् ।

नर्मदागिरिजं श्रेष्ठमन्यदपि हि लिङ्गवत् ।

कृत्वा पूजय विप्रेन्द्र लक्ष्यसे चेहितं फलम् ।

लिङ्गवलिङ्गाकारम् ।

तिथितत्त्वं—अश्वादल्पपरिमाणं न लिङ्गं कुत्रचिन्नरः ।

कुर्वीताङ्गुष्ठतो ह्रस्वं न कदाचित्समाचरेत् ॥

अङ्गुष्ठतस्तद्वृहत्पर्वमन्थितः ।

अङ्गुष्ठाङ्गुलिमानं तु यत्र यत्रोपदिश्यते ।

तत्र तत्र वृहत्पर्वमन्थिभिर्मिनुयात्सदा ॥

इति छन्दोगपारिशिष्टात् ।

शिवधर्मे—सहस्रमर्चयेद्भिङ्गं निरयं स न गच्छति ।

रुद्रलोकमवाप्नोति भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् ॥

तथा— बालुकानि च लिङ्गानि पार्थिवानि च कारयेत् ।

सहस्रपूजनात्सोऽपि लभते वाञ्छितं फलम् ॥

देवीपुराणे— मृदाहरणसघट्टप्रतिष्ठाह्वानमेव च ।

स्नपन पूजन चैव विसर्जनमत परम् ॥

हरो महेश्वरश्चैव शूलपाणि पिनाकधृक् ।

पशुपति शिवश्चैव महादेव इति क्रमात् ॥

अत्रानुष्ठानम्—ॐ हराय नम इति मृदाहरणम् । ॐ महेश्वराय नम इति सघट्टनम् । ॐ शूलपाणे इह सुप्रतिष्ठितो भवेति प्रतिष्ठा ।

ध्यायेन्नित्य महेश रजतगिग्निभ चारुचन्द्रावतस

रत्नाक्लपोज्वलाङ्ग परमशुभृगवराभीतिहस्त प्रसन्नम् ।

पद्मासीन समन्तास्तुतमरगणैर्व्याघ्रकृत्ति वसान

विन्धाद्य विश्ववन्द्य निखिलभयहर पञ्चवक्त्र त्रिनेत्रम् ॥

इति ध्यात्वा पिनाकधृगिहागच्छेत्यावाह्य । ॐ पशुपतये नम इति स्नपनम् । ऐष पाद्यम् । ॐ नमः शिवाय नम इति । एवमभ्यादिना पूजयेत् । विसर्जनात्पूर्वं भविष्योत्तरपुराणोक्त स्वभावप्रसिद्धैशान्यादिषु अष्टदिक्षु वामावर्तेन पूजनम् । यथा ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः, ॐ भवाय जलमूर्तये नमः, ॐ रुद्राय अग्निमूर्तये नमः, ॐ उषाय वायुमूर्तये नमः, ॐ भीमाय आकाशमूर्तये नमः, ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नमः, ॐ महादेवाय सोममूर्तये नमः ॐ ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः ।

मूर्तयोऽष्टौ शिवस्यैता पूर्वादिक्रमयोगत

आग्नेय्यन्ता प्रयोज्यास्तु वेद्या लिङ्गे शिव यजेत् ॥

ततः ॐ महादेव क्षमस्वेति सहारमुद्रया विसर्जयेत् ॥ इति ।

नन्दिपुराणे—गोभूहिरण्यवस्त्रादिवलिपुष्पनिवेदने ।

ज्ञेयो नमःशिवायेति मन्त्रः सर्वार्यसाधकः ॥

सर्वमन्त्राभिरुध्वायमोकाराद्यः षडक्षरः ।

तन्मन्त्रजापी तत्कर्मरततद्रूपद्वयमानसः ।

निष्कामो पुरुषो राजन्स रद्रूपद्वयमनुते ॥

पञ्चाक्षरमुपक्रम्य भविष्ये—

अपवित्र पवित्रो वा सर्वावस्था गतोऽपि वा ।

महापातकसंयुक्तो मन्त्रस्यास्य जपे यथा ।

अधिकारी भवेत्सर्व इति वेदेऽप्रवीच्छिव ॥ इति ।

तस्यार्थः—पूर्वोक्त्यर्थोपदेनुरोधाद्यथाधिकारी भवेत्तयाप्रवीदित्यर्थः ।

तथा— सर्वेषामेव पात्राणां वरं पात्रं महेश्वरः ।

• पतन्तं त्रायते यस्मादतीव नरकार्णवात् ॥

शिवमुदिश्य यदत्तं सर्वकारणकारणम् ।

तदनन्तफलं दातुर्भवतीति किमद्रुतम् ॥

इत्था नैवेद्यवस्त्रादीन्नाददीत कदाचन ।

त्यक्तव्यं शिवमुदिश्य तदाऽऽदाने न तत्फलम् ॥

आदाने ग्रहणे ।

शिवधर्मे—तस्मात्पुण्यैः फलैः पत्रैस्तोयैरपि च यत्फलम् ।

तदनन्तफलं ज्ञेयं भक्तिरेवात्र कारणम् ॥

तत्रैव— लिङ्गानुलेपनं फार्य दिव्यगन्धैः सुगन्धिभिः ।

वर्षकोटिशतं दिव्यं शिवलोके महीयते ॥

शिवधर्मे—तस्मात्पुण्यप्रदानेन लिङ्गेषु प्रतिमासु च ।

अशीतिवर्षकोटीनां दुर्गतिं न नरो व्रजेत् ॥

स्कान्दे—शुष्काण्यपि च पत्राणि श्रीवृक्षस्य सदैव हि ॥

प्रदातव्यानीति शेषः ।

भविष्ये—धत्तूरकैश्च यो लिङ्गं सकृत्पूजयते नरः ।

॥ गोदानफलं प्राप्य शिवलोके महीयते ॥

[वित्त्वपत्रैरखण्डैश्च लिङ्गं पूजयते सकृत् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥]

तथा— सर्वकामप्रदं वित्त्वं दारिद्र्यस्य विनाशनम् ।

वित्त्वपत्रात्परं नास्ति येन तुष्यति शंकरः ॥

तथा— केशकीटादिविद्वानि निशि पथ्युपितानि च ।

स्वयंपतितपुष्पाणि त्यजेत्परहृतान्यपि ॥

तथा— देवदारुसमेतं च सर्जं श्रीवासकुन्दुरम् ।

श्रीफलं चाज्यसंमिश्रं दग्ध्वाऽऽप्नोति परां गतिम् ॥

सर्जः शालरसः । श्रीवासः सरलद्रवः । कुन्दुरुः शैलेयमिति स्मार्तः ।

सहकीनिर्यास इति दामोदरः ।

एभ्यः सौगन्धिकं धूपं पद्मसहस्रगुणोत्तरम् ।

अगरु शतसाहस्र द्विगुण वा सिताङ्गुलम् ।

गुग्गुलु घृतसयुक्त साक्षाद्गृह्णानि शकरः ॥

तथा— तैलेनाऽपि हि यो दद्यात् घृताभावेन मानव ।

तेन दीपप्रदानेन शिववद्राजने भुवि ॥

नन्दिकेश्वरे—अथ भक्त्या शिव पूज्यो नैवेद्यमुपकल्पयेत् ।

यत्तदेवात्मन श्रेयस्तदीक्षाय प्रकल्पयेत् ॥

भविष्ये तु— शालितण्डुलप्रस्थ तु कुर्यान्न सुसस्त्रुतम् ।

शिवाय तु चरु दद्याच्चतुर्दश्या समाहित ॥

शैवसर्वस्वे स्कान्दे—

एनमाध्रफल पक्व य शम्भोर्विनिवेदयेत् ।

वर्षाणामयुत भोगै शिवलोके महीयते ॥

एव मोचाफल पक्व य शिवाय निवेदयेत् ।

सर्वभक्ष्यमहाभोगै शिवलोके महीयते ॥

मोचा कदली । शिवपुराणे—

नैवेद्य घृतसयुक्त मधुपर्क निवेदयेत् ।

अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानव ॥

परिपक्व सुसस्त्रुष्टमाज्यसिक्त सुसस्त्रुतम् ।

शिवाय मास दत्त्वा तु शृणु यत्फलमाप्नुयात् ॥

अक्षोपफलदानेन यत्फल परिकीर्तितम् ।

तत्फल प्राप्नुयान्नित्य सर्व मासनिवेदनात् ॥

[शिवधर्मे]—लिङ्गदेवी भवेदेवी लिङ्ग साक्षान्महेश्वर ।

तयो सपूजनात्स्याता दवी देवश्च पूजितौ ॥

देवीपुराण—सद्यः ब्रजेत्ततोऽस्य प्रणाल नैव लब्धयेत् ।

एकीभूतमना रुद्रे य कुर्यान्न प्रदक्षिणम् ॥

लिङ्गस्तेन भवेद्मन्थिर्न तस्य पुनरुद्भव ।

भविष्ये—जानुभ्या चैव पाणिभ्या शिरसा च विचक्षण ।

कृत्वा प्रणाम देवेशे सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥

लिङ्गपुराणे—गन्धधूपनमस्कारैर्मुखावाधैश्च सर्वेश ।

यो मामर्चयते तत्र तदा तुभ्याम्यह सदा ॥

महाभारते— सर्वलक्षणहीनोऽपि युक्तो वा सर्वपातकैः ।

सर्वं तरति तत्पापं भावयन्निश्वमात्मना ॥

राघवभट्टधृतम्—अबोमुखे वामहस्तेऽर्ध्वास्यं दक्षहस्तकम् ।

क्षिप्ताङ्गुलीरङ्गुलीभिः संयुज्य परिवर्तयेत् ।

प्रोक्ता संहारमुद्वेगमर्पणे तु प्रशस्यते ।

अर्पणे आत्मनीति शेषः ।

स्कान्दं— निर्मात्यं यो हि मद्भक्त्या शिरसा धारयिष्यति ।

अशुचिर्भिन्नमर्यादो नरः पापसमन्वितः ॥

नरके पच्यते घोरे तिर्यग्योनौ च संभवेन ।

प्रह्लाहाऽपि शुचिर्भूत्वा निर्मात्यं यस्तु धारयेत् ।

तस्य पापं महच्छीघ्रं नाशयिष्ये महाव्रतैः ॥

शुचिः स्नानादिनेत्यर्थः । एवं च—

स्पृष्ट्वा रुद्रस्य निर्मात्यं सवासा आप्लुतः शुचिः ॥

इति कालिकापुराणीयमशुचिविषयमनुपनीतविषयं वेति स्मार्तः ।

बहुचगृह्यपरिशिष्टे—

अग्राह्यं शिवनिर्मात्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।

शालग्रामशिलास्पर्शात्सर्वं याति पवित्रताम् ॥ इति कौर्मै ।

[कृत्यमहार्णवे शिवागमे लिङ्गपूजायां गुणफलसंश्लेषः ।

लयणेन च सौभाग्यं पार्थिवं सार्वकामिकम् ।

अनेकफलदं भूरिर्देवतं परिकीर्तितम् ॥

ग्रामदं तिलपिष्टोत्थं तुषोत्थं मारणे स्मृतम् ।

अत्रोत्थमन्नदं प्रोक्तं गुडोत्थं शान्तिवर्धनम् ॥

गन्धोत्थं गुणदं भूरिक्षर्करोत्थं मुखप्रदम् ।

वंशाङ्कुरोत्थं वज्रार्थं गोमयं सर्वरोगहन् ॥

वंशाद्वि संभवं लिङ्गं सर्वशत्रुनिवर्धनम् ।

आसुरीलवणोत्थं तु सर्वलोकवशंकरम् ॥

स्तम्भने रजनीपिष्टसंभवं लिङ्गमुत्तमम् ।

तण्डुलोद्भवपिष्टस्य लिङ्गं सर्वमुखप्रदम् ॥

दधिदुग्धोद्भवं लिङ्गं कीर्तिप्रामाज्यवर्धनम् ।

दूर्वागुह्यचीसंभूतमपमृत्युनिवारणम् ॥
 इक्षुवृक्षोज्ज्वलं लिङ्गमुच्चाटनकरं परम् ॥
 भागमोत्तनियोगं तु ज्ञात्वा सम्यग्विचक्षणः ।
 धनुमात्रस्य कुर्वीत लिङ्गं तत्तत्फलाप्तये ॥
 वार्षं वित्तप्रदं लिङ्गं स्फाटिकं सर्वकामिकम् ।
 आयुष्यं हीरजं ज्ञेयं रोगहृन्मौक्तिकोद्भनम् ॥
 सुसकृत्सुप्परागोत्थं वैदूर्यं शत्रुदर्पद्वन् ।
 पद्मरागं च लक्ष्मीदमैन्द्रनीलं यशः प्रदम् ॥
 महाभूतिप्रदं ह्रीं राजतं भूतिवर्धनम् ।
 आरवूटं तथा कास्यं शुभ्यं सामान्यभुक्तिदम् ॥
 श्रुपुसीसायसं लिङ्गं शत्रूणां नाशने हितम् ।
 विद्यार्थी लिङ्गसाहस्रं कामार्थी शतपञ्चकम् ॥
 सुदृढकामः सहस्रं तु वस्त्रार्थी शतमष्टकम् ।
 उच्चाटनपरं चैवमथोक्तं च सहस्रकम् ॥
 मारणार्थी सप्तशतं मोहार्थी शतमष्टकम् ।
 स्तम्भनं तु तदर्थेन मारणे तु तदर्थकम् ॥
 निगडान्मुक्तिकामस्तु सहस्रं तु समाचरेत् ।
 महाराजभये पञ्चसहस्रं सर्वकामदम् ॥
 एकं पापहरं प्रोक्तं त्रिलिङ्गं कार्यसिद्धिम् ।
 त्रिलिङ्गं सर्वकामानां कारणं परमाद्भुतम् ॥
 लिङ्गानामयुतं वापि महाराजभयं हरेत् ।
 कारागृहविमुक्त्यर्थमनन्तं कारयेद्बुधः ॥
 डाकिन्यादिभये प्राप्ते सहस्रं कारयेत्तदा ।
 सहस्राणां पञ्चशतं पुत्रकामेन कारयेत् ॥
 कृत्वा नित्यं विधानेन सगुणं पुत्रमाप्नुयान् ।
 लक्ष्मणेन तु लिङ्गानां यः करोति नरो मुनिः ।
 शिव एव भवेन्नित्यं नात्र कार्या विचारणा ॥

एतेषां च प्रतिष्ठापूजादिसर्वं प्रतिष्ठामयूसे वक्ष्यते ।

॥ इति लिङ्गप्रकृतिद्रव्यभेदेन फलभेदः ॥

अथ पञ्चसूत्रलिङ्गम् ।

सिद्धान्तशेखरे—

लिङ्गमस्तकविस्तारं पूजाभागसमं नयेत् ।
 नाहं तभिगुणं कुर्यान्नाहवपीठविसृतिम् ॥
 पूजांशत्रिगुणं कुर्यादुन्नतं पठिमुत्तमम् ।
 घृत्तं वा चतुरस्रं वा मध्ये कण्ठसमन्वितम् ॥
 द्विगुणं लिङ्गनाहाच्च कण्ठनाहं समाचरेत् ।
 त्रिमेखलमधश्चोर्ध्वं समं वाऽथ द्विमेखलम् ॥
 लिङ्गमस्तकविस्तारं पङ्कभागां विभजेत्ततः ।
 मेखलामेकभागेन कुर्यात्स्वातं च तत्समम् ॥
 लिङ्गदैर्घ्यसमं कुर्यात्प्रणालं पीठवाह्यतः ।
 विस्तारं तत्समं मूले तदैर्घ्यं च तदग्रतः ॥
 जलमार्गः प्रकर्तव्यस्तस्य मध्ये त्रिभागतः ।
 कुर्यात्पीठार्धदीर्घं वा प्राणालं च शिवागमात् ॥ इति ।

पूजा शलाका । आभोग उच्चता । नाहः पुष्टता । अयमाशयः—लिङ्ग-
 मस्तकव्यासो लिङ्गोच्चतासमः । व्यासत्रिगुणो नाहः । तावानेव पीठ-
 व्यासः । पीठं च घृत्तं चतुरस्रं वा । प्रणालिका च लिङ्गव्यासवन्मूले वि-
 स्तृता । अग्रे तदर्धो तद्विगुणा सार्धो वा दीर्घेति चन्द्रिकायाम् ।

॥ इति लिङ्गपरिमाणम् ॥

चमत्कारचिन्तामणौ—

. नान्यथा गृहेऽश्मजामूर्तिश्चतुरङ्गुलतोऽधिका ।
 न वितस्त्यधिका धातुसंभवा श्रेय इच्छता ॥ इति ।

अथ शालग्रामशिलापरीक्षा ।

विष्णुरहस्ये—गण्डकी सरितां पुण्या चक्रतीर्थं च तत्र च ।

शालग्रामामिषं क्षेत्रं तत्र तेषां समुद्भवः ॥

द्वारदेशे समे चके दृश्येते नान्तरीयके ।

वासुदेवः स विज्ञेयः शुक्लाभश्चातिशोभनः ॥

द्वे चके एव संलभे पूर्वभागे तु पुष्कलः ।

संकर्षणः स विज्ञेयो रक्ताभश्चैव सर्वतः ॥

प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु श्यामवर्णस्तथैव च ।

सुशिरच्छिद्रबहुलो दीर्घाकार. मुशोभन ॥
 अनिरुद्धश्च नीलाभो वर्तुलश्चातिशोभन ।
 अतसीपुष्पसंकाशो विन्दुना परिशोभित ॥
 परितो वर्तुलश्चैव वामन परिकीर्तित ।
 त्रिन्दुत्रयसमायुक्तः शङ्खचक्रान्वितो मुखे ॥
 सत्तद्गुणसयुक्तो धनुर्वलयपञ्चक ।
 दीर्घदक्षिणक्षामास्यो मत्स्याकृतिसमीपग ॥
 कूर्ममूर्तिर्गर्भवकौ दुर्लभ सर्वकामद ।
 वनमालाङ्किता श्यामा वर्तुलाचातिशोभना ॥
 श्रीवत्सकौस्तुभाभ्या च विन्दुना परिशोभिता ।
 सा चैव देवदेवस्य पूजनीया महीक्षिता ॥
 बराहशक्तिलिङ्गस्तु चक्रे च विषमे स्थिते ।
 इन्द्रनीलनिम स्थूलशिरेखालाच्छित्त शुभ ॥
 वपिलो नारसिंहस्तु बहुचक्रस्तयोजनत ।
 वामपार्श्वे स्थिते चक्रे कृष्णवर्णे सविन्दुके ॥
 लक्ष्मीनृसिंहो विख्यातो भुक्तिमुक्तिप्रदायक ।
 पारिजातध्वजी वज्री वर्तुल स्यात्सुशोभन ॥
 पुरुषोत्तम स विज्ञेय सर्वसौभाग्यदायक ।
 रेखाद्वितयसयुक्त पद्मचिह्नित एव च ॥
 श्यामो नारायणो देवो नाभिचक्रस्तयोजनत ।
 ध्वजवज्राङ्कुशोपेतश्चतुश्चक्रश्च वर्तुल ॥
 गदाकृतिस्तथा रेखातद्दक्ष्मीर्मध्यदेशत ।
 लक्ष्मीनारायणो देवो क्षमीष्टफलद शुभ ॥
 चतुश्चक्र सूक्ष्मरन्ध्रो वनमालाङ्कितोदर ।
 लक्ष्मीनारायण प्रोक्तो मुक्तिमुक्तिफलप्रद ॥
 अनन्तचक्रैर्बहुभिश्चिह्नैरप्युपलक्षित ।
 अनन्त स तु विज्ञेय सर्वपूजाफलप्रद ॥
 नानावर्णोऽनन्त स्यान्नागभोगेन चिह्नित ।
 कृष्णवर्णस्तथा विष्णु स्थूलचक्रः सुशोभन ॥
 गदाकृतिस्तथा ररगा दृश्यते मध्यदेशत ।
 श्रीवरस्तु तथा देवचिह्नितो वनमालया ॥

चन्द्रम्वमुकुलाकारः सर्वसिद्धिफलप्रदः ।
 त्रिविक्रमो महादेवः श्यामवर्णो महाद्युतिः ॥
 वामपार्श्वे तथा चक्रे रेखा चैव तु दक्षिणे ।
 मधुसूदनः ॥ विज्ञेय एकचक्रो महाद्युतिः ॥
 स्निग्धवर्णोऽत्रणश्चैव वर्तुलश्च सुशोभनः ।
 श्यामलश्च महासूक्ष्मो दधिविन्दुसमन्वितः ॥
 दधिधामन इत्युक्तः पशुपुत्रधनप्रदः ।
 वामपार्श्वे तथा चक्रे रेखा चैव तु दक्षिणे ॥
 पीतवर्णो धनुःपशुलाङ्गुलाङ्कितशोभितः ।
 वामेतरे च रामश्च सर्वमृत्युहरः शुभः ॥
 परमेष्ठी तु शुक्लः पद्मचक्रसमन्वितः ।
 वर्तुलस्तु तथा पीतः पृष्ठे तु सुपिरः स्मृतः ॥
 हयग्रीवोऽङ्कुशाकारो रेखापद्मसमीपगः ।
 बहुरेखासमाकीर्णः पक्षे नीलमथापि वा ॥
 कृष्णवर्णः समारुघातो महासारस्वतप्रदः ।
 चतस्रो यत्र दृश्यन्ते रेखाः पार्श्वसमीपगाः ॥
 द्वे चक्रे मध्यदेशे तु सा शिला तु चतुर्मुखी ।
 धूर्मचक्रे महाभागे श्वेताभा गोसुरान्विता ॥
 शिवनाभिरिति ख्याता भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
 चक्रं तु केवलं यत्र पङ्कजेन समन्वितम् ॥
 लाञ्छनं वनमालायाः श्रिया युक्तः स्थितो हरिः ।
 एकं चक्रं शिरोदेशे नानावर्णं मुखे तथा ॥
 सुदर्शनमिति ज्ञेयं सर्वपापप्रणाशनम् ।
 चतुश्चक्रः श्यामवर्णो भवेद्देवो जनार्दनः ॥
 वैकुण्ठो मणिवर्णाभश्चक्रमेकं तथाम्बुजम् ।
 द्वारोपरि तथा रेखा पूजयेत्तं सुखप्रदम् ॥
 गोविन्दः पुण्डरीकाक्षः कृष्णवर्णो महाद्युतिः ।
 दक्षिणे तु गदाचक्रे वामे पर्वतलाञ्छनम् ।
 अर्धचन्द्राकृतिर्देवो हृषीकेशः स उच्यते ॥

अथ तन्महिमा लिङ्गपुराणे—

लिङ्गकोटिसहस्रेषु पूजितैर्यत्फलं भवेत् ।

तत्फलं कोटिगुणित शालिग्रामशिलार्चने ॥
शालिग्रामसमीपे तु क्रोशमार्गं समन्ततः ।
कीटकोऽपि मृतो याति वैकुण्ठभवनं नरः ॥

तथा— शालिग्रामशिलाचक्रं यो दद्यादानमुत्तमम् ।
भूचक्रं तेन दत्तं स्यात्सशैलवनकाननम् ॥

शिववाक्यम्—

अनर्हं मम नैवेद्यं पत्र पुष्प फलं जलम् ।
शालिग्रामशिलासंगात्सर्वं याति पवित्रताम् ॥
शालिग्रामशिलाया तु सदा श्रीविष्णुपूजनम् ।
नित्यं समिहितस्तत्र शालिग्रामे जगद्गुरुः ॥

सदा समिहित इत्यनेन प्रतिष्ठादिकं नास्तीत्युच्यते ।
अपूज्या उक्ता—

कपिला कर्बुरा भग्ना बहुचर्म्मैश्चक्रिका ।
धृहन्मुखी बृहन्नका लग्नचक्राऽथवा पुनः ॥
अबोमुखी भग्नचक्रा पृजिता दुःखदायिनी ।
अविज्ञाता च चक्रा च रुक्मा स्थूलाऽतिदुःखदा ॥ इति ।
॥ इति शालिग्रामशिलापरीक्षा ॥]

अथ गुरुपूजा मातृये—

तत्रोपदेष्टारमपि पूजयेच्च ततो गुह्यम् ।
न पूज्यते गुरुर्यत्र नैस्तत्राफला क्रिया ॥

शिवपुराणे—

वस्त्राभरणमाल्यानि शयनान्यासनानि च ।
प्रियाणि चात्मनो यानि तानि देवानि वै गुरोः ॥ इति ।

अथ वैश्वदेवविधिः ।

नृसिंहपुराणे—पौर्णमेण च सूतेन ततो विष्णुं समर्चयेत् ।
वैश्वदेवं ततः कुर्याद्वर्णमर्चयेच्च ॥ इति ।

शान्तातप —वैश्वदेवः प्रवर्तव्यः पञ्चसूनाप्नुतये । इति ।

मूना हिंसास्थलम् ।

यम — पञ्चसूना गृहस्थस्य वर्तन्तेऽहरहः सदा ।
घण्टणी पेपणी धुल्ली जलकुम्भ अवस्तरः ॥ इति ।

कण्डणी उलूखलमुसलादि । अवस्कर उत्करः । उपस्कर इति पाठे
शर्पचालन्यादि ।

वृद्धवसिष्ठः—अनग्निस्तु यो विप्रः सोऽन्नं व्याहृतिभिः स्वयम् ।

हुत्वा शाकलमन्त्रैस्तु शिष्टाद्भूतवलिं हरेत् ॥

अनग्निं भाव्याऽभावेन श्रौतस्मार्तान्निपरिग्रहाधिकारशून्यः ।

कर्मप्रदीपे—अग्न्यादिगौतमेनोक्तो होमः शाकल एव च ।

अनाहिताग्नेरप्येव युज्यते बलिभिः सह ॥

अग्न्यादिरग्निवाय्वादिदैवत्यभूरादिव्याहृतिकरणकः । अपिरेव-
कारार्थे ।

विष्णुः—प्रजापतिर्हविर्हुत्वा पूजयेदतिथिं ततः ।

प्रजापतिर्विरिति “प्रजापतये स्वाहा” इति हुत्वेत्यर्थः । पूजयेदिति तु
स्वकालीनमनुष्ययज्ञानुवादमात्रं न तु होमोत्तरं तद्विधिः । ज्योतिष्टोमे
शाकलहोमाङ्गभूता “देवदृष्टस्यैनसोऽवयजनमसि” इत्याद्याः पदं शाकल-
मन्त्राः कातीयानां प्रसिद्धाः ।

आश्वलायनगृह्ये—“अथ सायंप्रातः सिद्धस्य हविष्यस्य जुहुयात् अग्नि-
होत्रदेवताभ्यः सोमाय वनस्पतयेऽग्नीषोमाभ्यामिन्द्राग्निभ्यां वावापृथि-
वीभ्यां भन्वन्तरय इन्द्राय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे स्वाहेति । सायंशब्दो
रात्रिपरः, प्रातःशब्दोऽहःपरः । सिद्धस्य एकस्य अग्निहोत्रदेवताभ्य इति ।
सायमग्निः प्रातः सूर्यः, प्रजापतिरुभयत्र । सोमाय वनस्पतय इत्येकाहुतिः
वनस्पतिशब्दस्य यौगिकत्वेन विशेष्यापेक्षत्वेनासमासंस्थसन्निहितसो-
मपदान्वयात् । यथा “त्वाष्ट्रं पात्नीवतमालभेत” इत्यत्र “पात्नीवत-
शब्दस्य त्वाष्ट्रपदान्वयः । अग्निर्वृहस्पतिः सोमो वनस्पतिरित्यादौ वनस्पते-
र्गुणत्वदर्शनाच्च विश्वेभ्यो देवेभ्य इत्यप्येकैकाहुतिः विश्वशब्दस्य सर्वनाम्नो
बुद्धिस्थापेक्षत्वेन सन्निहितदेवशब्दान्वयात् । एवं दशाहुतयो भवन्ति ।
वृत्तिकृतो नारायणस्याप्ययमेवाशयः । इत्येव देवयज्ञः ।

भूतयज्ञमाह स एव—अथ बलिहरणमेताभ्यश्चैव देवताभ्योऽह्य ओष-
धिदमस्पतिभ्यो गृहाय गृहदेवताभ्यो वास्तुदेवताभ्य इन्द्रायेन्द्रपुरुषेभ्यो
यमाय यमपुरुषेभ्यो वरुणाय वरुणपुरुषेभ्यः सोमाय सोमपुरुषेभ्य इति
प्रतिदिशं, ब्रह्मणे ब्रह्मपुरुषेभ्य इति मध्ये, विश्वेभ्यो देवेभ्यः सर्वेभ्यो भूते-

भ्यो दिवाचारिभ्य इति दिवा, नक्तचारिभ्य इति नक्त, रक्षोभ्य इत्युत्तरत ।
अथानन्तरमेताभ्य पूर्वोक्ताभ्यो दक्षभ्य । चकारो वक्ष्यमाणसमुच्चये ।
उदगिन्द्राद्वलेरिन्द्रपुरुषेभ्यो बलिं हरेत् ।

इति कारिकोक्ते इन्द्रादिप्रधानदेवतोत्तरदेशेषु तत्पुरुषेभ्यो बलि ।
पूर्वोक्तदशाहुतिदेवताकोन्वलीन् प्राक्सस्यान् दत्त्वा किञ्चित्स्थलं त्यक्त्वा
ऽन्य इत्यादिभ्यो बलीन्दत्त्वाऽन्तराले प्रागादिषु इन्द्रादिभ्यस्तत्पुरुषेभ्यश्च
दत्त्वा तन्मध्ये ब्रह्मणे तच्चतुर्दिक्षु ब्रह्मपुरुषादिभ्यो दद्यात् । प्रथम दिवाचा-
रिभ्यो बल्युक्तेर्वैश्वदेव प्रातरारभ्य इति वृत्तौ । इति भूतयज्ञ ॥

पितृयज्ञमाह—स्वधा पितृभ्य इति प्राचीनावीती शेषं दक्षिणा निन-
येत् । शेषप्रदणादानन्तरं परप्रयुक्तं च द्रव्यं लभ्यते । दक्षिणा दक्षि-
णस्या दिशि “ दक्षिणादाच् ” ॥ इति पितृयज्ञ ॥

इदमेव कर्मत्रयं वैश्वदेवशब्दाच्च [देवंभूतयज्ञयोर्वैश्वदेवसम्बन्धेन
तत्प्रत्ययानात् पितृयज्ञस्य तच्छेषप्रतिपादकत्वेन तदङ्गत्वाच्च ।]

कारिका—गृहस्थो वैश्वदेवार्य कर्म प्रारभत दिवा ।

तन्न नास्त्यत्र भगवद्वृत्तिकारवचो यथा ॥

औपासनाभिमुख्यं वा समिध्याथ हविर्भुजम् ।

पर्युह्य परिपिच्यामिमलकृत्य च पूर्ववत् ॥

हवित्य एकमादध्यादधिधित्यानले च तत् ।

प्रोक्ष्योद्वास्य घृताभ्यक्तं हवि सव्यं निधाय च ॥

हुत्वा हस्तेन सूर्यायेत्यादिभिर्दक्षभिस्तन ।

प्रज्ञापतिपदस्योत्तिर्वैश्वदेवे न तु स्मृतिः ॥

पर्युहनोक्षणे कुर्याद्देवयज्ञोऽयमीरित ।

एतैर्भुवि बलीन्दत्त्वा प्राक्सस्यानाभिरन्तरान् ॥

मुक्त्वाऽन्तरालं प्राक्सस्यानञ्च इत्यादिभिर्हरेत् ।

इहाऽपि भवति स्वाहाकारो न पितृयज्ञे ॥

अङ्गो हताद्वले प्रत्यगिन्द्रायेति बलिं हरेत् ।

यमायेत्यन्तरालस्य हरेद्दक्षिणतो बलिम् ॥

याम्याद्वलेरुदग्याम्यपुरुषेभ्यो बलिं हरेत् ।

प्राग् ब्रह्मणो बलेर्हुत्वा ब्रह्मणायेति मन्त्रन ॥

तस्मादुदक् तु वरुणपुरुषेभ्यो वलिं हरेत् ।
 सोमायेत्यन्तरालस्य हरेदुत्तरतो वलिम् ॥
 सौम्याद्वलेरुदक्सोमपुरुषेभ्यो वलिं हरेत् ।
 जयन्तस्त्वाह स्वाहान्तैर्वलीन्दत्त्वा निरन्तरान् ॥
 मुक्त्वाऽन्तरालमिन्द्रादिदिग्देवानां वलीन्हरेत् ।
 इन्द्रादिवलिः पूर्वं प्राच्यां स्यात्पौरुषो वलिः ॥
 अन्तराले वलीन्हत्वा शिष्टैर्मन्त्रैरतः परम् ।
 रक्षोभ्य इति सर्वस्माद्वलिमुत्तरतो हरेत् ॥
 भूतयज्ञोऽयमुदितः प्राचीनावीत्यतः परम् ।
 स्वधा पितृभ्य इत्युक्त्वा दक्षिणस्यां तु निर्धपेत् ॥ इति ।

अयं च नराकारः संपद्यते । चक्राकारमप्याह ।

शौनकः—चक्राकारेण यो विप्रः सदा भूतवलिं हरेत् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ इति ।

अथ गृह्यवलिः ।

शौनकः—देवयज्ञान्नशेषात्तु गृहद्वाराविषु क्षिपेत् ।

चण्डालपतितादिभ्यो भूतयज्ञान्नशेषतः ।

पितृयज्ञान्नशेषेण वायसेभ्यो वलिं हरेत् ॥ इति ।

गृह्यपरिशिष्टे—“अथास्य शेषेण गृहदेवतानां वलीन्द्वारे पितामहाय प्रकीले रुद्रायाऽथ गृहप्राच्यादिप्रतिदिशं सनवग्रहायेन्द्राय बलभद्राय यमविष्णुभ्यां रुद्रन्दवरुणाभ्यां सोमसूर्याभ्यामग्निभ्यां वसुभ्यो नक्षत्रेभ्योऽथ मध्ये वास्तोष्पतये ब्रह्मणे प्रागादिभित्तिमूलेषु सिद्धयै वृद्धयै श्रियै कीर्त्यै वरुणायोदधानेऽग्निभ्यां द्यपदुपलयोर्द्यावापृथ्वीभ्यामुत्पल-मुसलयोरथ निष्क्रम्य भूमावप आसिच्य श्वचाण्डालपतितभूतवायसेभ्योऽन्नं भूमौ विकिरेद्ये भूताः प्रचरन्ति दिवा वलिमिच्छन्तो वितुदस्य प्रेष्टाः । तेभ्यो वलिं पुष्टिकामो ददामि मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्ददातु इति । रात्रौ चेन्नक्तं वलिमिति ब्रूयादथ प्रक्षालितपाणिपाद आचम्य ” शान्ता पृथिवी शिवमन्तरिक्षम् ” इति जप्त्वाऽन्यानि च स्वस्त्ययनानि । ततो मनुष्ययज्ञपूर्वकं सुञ्जीत ॥ इति ।

अथ मनुष्ययज्ञः ।

मनुः— अतिथिभ्योऽन्नदानं तु नृत्यज्ञः स तु पञ्चमः । इति ।

मार्कण्डेयपुराणे—

आचम्य च ततः कुर्यात्प्राज्ञो द्वाराबलोकनम् ।
मुहूर्तस्याष्टमं भागमुदीक्ष्यो ह्यतिथिर्भवेत् ॥
न मित्रमतिथिं कुर्यान्नैरुग्रामनिवासिनम् ।
अज्ञातकुलनामानं तत्काले समुपस्थितम् ॥
युभुक्षुमागतं श्रान्तं याचमानमर्कचनम् ।
ग्राहणं ग्राहुरतिथिं संपूज्यः शक्तितो बुधैः ॥ इति ।

कौर्मे— हन्तकारमथामं वा भिक्षा वा शक्तितो द्विजः ।
दद्यादतिथये नित्यं बुध्येत परमेश्वरम् ॥ इति ।

अतिथिं परमेश्वरं भावयेदित्यर्थः ।

मनुः— प्रासमात्रं भवेद्भिक्षा अग्रं प्रासचतुष्टयम् ।
अग्रं चतुर्गुणोदृत्य हन्तकारो विधीयते ॥ इति ।

पराशर.— दद्याच्च भिक्षात्रितयं पवित्राद्रग्रचारिणौ ।
इच्छया च तपो दद्याद्विभवे सत्यवारितम् ॥ इति ।

माधवीये पुराणे—

यत्फलं सोमयागेन प्राप्नोति धनवान् द्विजः ।
सम्यक्पञ्चमहायज्ञैर्दृष्टिस्तद्वाप्नुयान् ॥ इति ।

व्यासः— पञ्चयज्ञास्तु यो मोहान्न करोति गृहाश्रमी ।
तस्य नाय च न परो लोको भवति धर्मतः ॥ इति ।

अथ कात्यायनीयो वैश्वदेवानुष्ठानप्रयोगः ।

पञ्चमहायज्ञनिमित्तं मातृपूजापूर्वकमाभ्युदयिरुश्राद्धं कृत्वा वैश्व-
देवार्थं पाकं त्रिधाय ममुद्रुम्याभिषार्य पश्चादग्नेः प्राङ्मुख उपविश्य
दक्षिणं जान्वान्य मणिरोदकेनाग्निं पर्वुत्स्यौदनमादाय अक्षणे स्वाहा इदं
अक्षणे, प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये, गृह्णाभ्यः स्वाहा इदं गृह्णाभ्यः,
पश्यपाय स्वाहा इदं पश्यपाय, अनुमनये स्वाहा इदमनुमनये, इति
पश्चादुनीर्त्स्वा मणिवसमीपे हुतशेषेणाग्नेन पर्जन्याय नमः इदं पर्जन्याय,
अग्नौ नम इदमग्न्यः, पृथिव्यै नमः इदं पृथिव्यै इति प्राङ्मुखमुदङ्मुखं
वा वलिं दत्त्वा दक्षिणोत्तरयोर्द्वारं दक्षिणयोर्यथाक्रमं धात्रे नमः इदं धात्रे,
विधात्रे नमः इदं विधात्रे, इति वलिद्वयं दत्त्वा प्रागादिक्रमेण वायवे नमः
इदं वायवे, इति प्रतिदिशं वलिचतुष्टयं दत्त्वा प्राच्यै दिशे नमः इदं प्राच्यै,

दक्षिणायै दिशे नमः इदं दक्षिणायै, प्रतीच्यै दिशे नमः इदं प्रतीच्यै,
उदीच्यै दिशे नमः इदम् उदीच्यै, इति दिग्भ्यश्च यलिं दत्त्वा तदन्तराले
ब्रह्मणे नमः इदं ब्रह्मणे, अन्तरिक्षाय नमः इदमन्तरिक्षाय, सूर्याय नमः
इदं सूर्याय इति वलित्रयं दत्त्वा तदुत्तरतो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः
इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः, विश्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः इदं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः
इति वलिद्वयं दत्त्वा तयोरप्युत्तरतः उपसे नमः इदमुपसे, भूतानां पतये
नमः इदं भूतानां पतये, इति वलिद्वयं दत्त्वा ब्रह्मादिवलीनां दक्षिणतः
प्राचीनावीती दक्षिणामुखः पितृभ्यः स्वधा नमः इति मन्त्रेण पाञ्चव-
शिष्टाग्नेनैकं यलिं दत्त्वा पात्रौ प्रक्षाल्य “यश्मैतत्ते निर्णेजने नमः” इति
निर्णेजनजलं वायव्यां दिश्युत्सृज्येदं यक्ष्मणे इत्युक्त्वा

ऐन्द्रवारुणवायव्याः सौम्या वै नैऋतास्तथा ।

वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं मयाऽर्पितम् ॥

इदं वायसेभ्यः ।

द्वौ श्वानौ श्यामश्वलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ ।

ताभ्यां पिण्डं प्रदास्यामि स्यातामेतावद्विसकौ ॥

इदं श्वभ्यः ।

देवा मनुष्याः पितरो वयांसि सिद्धाश्च यक्षोरगदैत्यसंघाः ।

प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता ये चान्नमिच्छन्ति मयाद्य दत्तम् ॥

इदं देवादिभ्यः ।

पिपीलिकाः कीटपतङ्गिकाद्या बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धवद्धाः ।

तृत्थ्यर्थमन्नं हि मया प्रदत्तं तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु ॥

इदं पिपीलिकादिभ्यः ।

इति काकादिवलीन्वहर्दिदत्त्वा पादौ प्रक्षाल्याचम्यातिथिप्राप्तौ पादप्र-
क्षालनपूर्वकं गन्धमाल्यादिभिरभ्यर्च्योन्नं परिविष्य हन्त तेषामिदं मनु-
ष्याय इति संकल्प्य दद्यात् । इति दिक् ।

॥ इति कातीयानां वैश्वदेवः ॥ इति पञ्चमहायज्ञाः ॥

अथ भोजनम् ।

व्यासः—पश्चाद्भो भोजनं कुर्यात्प्राहुमुखो मौनमास्थितः ।

हस्तौ पादौ तथैवास्यमेषु पश्चार्द्रता मता ॥ इति ।

आश्वमेधिके—आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत ग्राह्यमुखश्चासने शुचौ ।

पादाभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा पादेनैकेन वा पुन ॥ इति ।

धौधायन —उपलिप्ते समे स्थाने शुचौ शृङ्गासनान्विते ।

चतुरस्र त्रिकोणं वा वर्तुलं चार्धचन्द्रकम् ॥

कर्तव्यमानुपूर्व्येण ब्राह्मणादिषु मण्डलम् ॥

पेठीनसि.—सौवर्णे राजते ताम्रे पद्मपत्रपलाशयोः ।

भाजने भोजनं कुर्वन्त्रिरात्रफलमश्नुते ॥

एक एव तु यो भुङ्क्ते विमले कास्यभाजने ।

चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुः प्रज्ञा यशो यलम् ॥ इति ।

पद्मपलाशपत्रग्रहणं गृहस्थभिन्नपरम् ।

ताम्रपात्रे न भुञ्जीत भिन्नरास्ये मलाविले ॥

पलाशपद्मपात्रेषु गृही मुक्तवैन्दवं चरेत् ।

ब्रह्मचारियतीनां तु चान्द्रायणफलं भवेत् ॥

इति वृद्धमनुज्यासोत्तेरिति मदनादयः । पलाशो बह्वीपलाश इति स्मृत्यर्थसारे । कास्यपात्रं गृहिमात्रपरम् ।

ताम्रयूलाभ्यञ्जनं चैव कास्यपात्रे च भोजनम् ।

यती च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेन् ॥

इति प्रचेतस उक्तेः । पात्र प्राणाहुतिग्रहणोत्तरं यन्त्रादौ स्थाप्यम् ।

न्यस्तपात्रस्तु भुञ्जीत पञ्च प्रासान्महामुने ।

शेषमुद्धृत्य भोक्तव्यं पित्रर्थे तु न चोद्धरेत् ॥

इति व्यासोक्तेः । न्यस्तपात्रः भूमिन्यस्तपात्रः । उद्धृत्य यन्त्रादौ स्था-

प्य । पित्रर्थे श्राद्धे भूमितो नोद्धरेदित्यर्थः इति मदनादयः ।

तथाच ब्रह्मपुराणे—

पित्र्ये कर्मणि भुञ्जानो भूमौ पात्रं न चालयेत् ॥ इति ।

[तत्रैव—अत्र दृष्ट्वा प्रणम्यादौ प्राञ्जलिः कथयेत्ततः ।

अस्माकं नित्यमस्त्वेतदिति भस्त्याथ बन्दयेत् ॥ इति ।]

गोमिल.—‘अयातः प्राणाहुतिरूपं व्याहृतिभिर्गायत्र्याभिमन्त्र्य

कृतं त्वा सत्येन परिपिञ्चामि इति सायं । सत्यं त्वर्तेन परिपिञ्चामि,

• इति प्रातः’ इत्यादि । तदनन्तरं वृत्त्यमुक्तं भविष्यत्पुराणे—

भोजनात्किञ्चिदन्नाभं धर्मराजाय वै वलिम् ।

दत्त्वाथ चित्रगुप्ताय प्रेतेभ्यश्चेदमुचरेत् ॥

यत्र कचन संस्थानां क्षुत्तृष्णोपहृतात्मनाम् ।

प्रेतानां तृप्तयेऽश्न्यमिदमस्तु यथासुखम् ॥ इति ।

तदनन्तरं कृत्यमाह याज्ञवल्क्यः—

अपोशनेनोपरिष्ठादधस्तादभ्रता तथा ।

अनम्रममृतं चैव कार्यमन्नं द्विजातिना ॥ इति ।

कौर्मे— अमृतोपस्तरणमसीत्यपोशानक्रियां चरेत् ॥ इति ।

शौनफः—स्वाहान्ताः प्रणवाद्याश्च नास्मा मन्त्राश्च वायवः ।

तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठलम्बा प्राणाहुतिर्भवेत् ॥

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरपाने जुहुयात्ततः ।

फणिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैरन्ये च जुहुयात्ततः ॥

तर्जनीं तु घृहिः कृत्वा उदाने जुहुयाद्वधिः ।

समाने सर्वहस्तेन स(मु)माद्याहुतिर्भवेत् ॥

जिह्वयैव ग्रसेदन्नं दग्धनेन न संस्पृशेत् ॥ इति ।

जिह्वाग्रसने च विशेष उक्त आश्वमेधिके—

यथा रसं न जानाति जिह्वा प्राणाहुतौ नृप ।

तथा समाहितः कुर्यात्प्राणाहुतिमतन्त्रितः ॥ इति ।

विष्णुपुराणे—

अग्नीयात्तन्मना भूत्वा भुञ्जीतमधुरं रसम् ।

लवणाम्लौ तथा मध्ये कटुतिक्तादिकांस्ततः ॥

प्राग्द्रवं पुरुषोऽग्नीयान्मण्ये च कठिन्ताशनः ।

अन्ते पुनर्द्रवाशी तु धलारोग्यैर्न मुञ्चति ॥

[आपस्तम्बः]—

अष्टौ ग्रासा मुनेर्महत्याः षोडशारण्यवासिनः ।

द्वात्रिंशत्तु गृहस्थस्य ह्यमितं ब्रह्मचारिणः ॥ इति ।

वृद्धमनुः—[पीत्वापोशानमग्नीयात्पात्रदत्तमगर्हितम् ।

भार्याभृतकदासेभ्य उच्छिष्टं शेषयेत्ततः ॥ इति ।

पुलस्त्यः—[भोजनं न निःशेषं कुर्यात्प्राज्ञः कथंचन ।

अन्यत्र दधिसक्त्वज्यपल्लक्षीरमध्वपः ॥ इति ।

पल्लं तिलमिश्र ओदनः ।

मनुः—सायंप्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ।

नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥ इति ।

अत्र पूर्वार्धे कालद्वयविशिष्टभोजनक्रियाया एव नियमविधेः । षोडश-
तुर्निशाः स्त्रीणां तस्मिन्युष्मासु संविशेत् ॥ इतिवत् ।

अतः सत्यां बुभुक्षायां सति चान्ने भोजनमकुर्वन् प्रत्यवैतीति
विज्ञानेश्वरः । सायंप्रातरेवेति कालान्तरपरिसंख्येति हरदत्तः । इयं
च तदुपपत्तिः । नेयं त्रिदोषा कालान्तरस्य विध्यप्राप्तत्वेन शास्त्रप्राप्तया-
धरूपदोषाभावात् । पञ्च पञ्चनखा मक्ष्या इत्यत्रेव शशादिभिन्नभ्रादिपञ्च-
नखभक्षणस्य रात्राप्राप्तत्वेन तद्भावेऽपि दोषाभावः । स्वार्थहानिपरार्थकल्प-
नादोषद्वयवती लक्षणा तु नान्तरेत्याद्येकवाक्यतानुरोधेनाङ्गीकार्या ।
सोढा च 'जातपुत्रः कृष्णकेशोऽग्निमादधीत' इत्यत्र वयोविशेषस्य
'अर्धमन्तर्वेदि भिनोत्यर्धं वह्निर्वेदि' इत्यत्र च संधिदेशस्य लक्षणा वा-
क्यभेदभिया तत्र तत्र तन्त्रे । सायंप्रातर्भुञ्जीतैवेति नियमविधौ हि
मध्येऽपि भोजनस्य प्राप्तत्वेन तन्निपेक्षार्थं नान्तरेत्यादि पृथग्वाक्यं स्या-
दिति । अहं तु श्रुवे—नान्तरेत्यादिकमेव विधिप्रत्यययुक्तत्वादन्तरालका-
लनिपेक्षकम् । पूर्वार्धं स्वर्धवादोऽन्त्यपादश्च । तदुक्तावेव सायंप्रातःशब्दाव-
न्तराशब्दार्थनिरूपकौ 'संदिग्धेषु वाक्यशेषात्' इतिन्यावान् 'जामि वा
एतच्चक्षस्य क्रियते यदन्वञ्चौ पुरोडाशायुपांशुयाजमन्तरा यजति' इत्यत्रे-
वान्तराशब्दार्थस्य पुरोडाशाविति । एवं च सायंप्रातःपदयो रात्रिम-
ध्याह्नलक्षणाऽपि युक्ता ।

वृषास्य पश्चिमां संध्यां इत्वार्मिं समुपास्य च ।

मृत्यैः परिशृतो मुक्त्वा नातिवृत्तोऽयं संविशेत् ॥

'मध्यंदिनो मनुष्याणां,' 'मध्यंदिने मनुष्या अशनमभ्यवहरन्ति' इत्या-
दिवाक्यप्राप्तानुवादत्वात् । पूर्वमतद्वये तु त्रिभौ लक्षणातिष्ठेति दिक् ।

* भोजने च पञ्चप्रासभक्षणान्तं मौननियमः ततस्त्वनियमः ।

पञ्चप्रासान्महामौनं प्राणाद्याप्यायनं महन् ॥

इति शृद्धमनूक्तेः । पुराणे—

द्यास्यतो वरुणः शक्तिं जुह्वतोऽग्निः श्रियं हरेत् ।

मुञ्चतो मृत्युरायुष्यं तस्मान्मौनं त्रिषु स्मृतम् ॥ ३१

अत्र विशेषः पृथ्वीचन्द्रोदये स्मृतिरत्नावल्याम्—

यवीयान्सपिता यश्च भुक्त्वा आद्विकभोजनम् ।

प्राणामिहोत्रादन्यत्र नासौ मौनं समाचरेत् ॥ इति ।

मौनी वाप्ययवाऽमौनी प्रहृष्टः संयतेन्द्रियः ।

भुञ्जीत विविधद्विप्रो न चोच्छिष्टानि वापयेत् ॥ इति ।

न प्रकिरेदित्यर्थः ।

पैठीनसिः—लवणं व्यञ्जनं चैव घृतं तैलं तथैव च ।

लेह्यं पेयं च विविधं हस्तदत्तं न भक्षयेत् ॥ इति ।

स एष—दर्व्या देयं घृतान्नं तु समस्तव्यञ्जनानि तु ।

तथा—उदकं यद्यप्यन्नं यो दर्व्या दातुमिच्छति ।

स भ्रूणहा सुरापश्च स स्तेनो गुरुतल्पगः ॥ इति ।

शातातपः—हस्तदत्तानि चान्नानि प्रत्यक्षलवणं तथा ।

मृत्तिकाभक्षणं चैव गोमांसाशनवत्स्मृतम् ॥ इति ।

आश्वमेधिके—उदक्यामपि चण्डालं श्वानं कुक्कुटमेव च ।

भुञ्जानो नैव पश्येत्तु तदन्नं तु परित्यजेत् ॥

केशकीटावपन्नं च मुखमारुतवीजितम् ।

अन्नं तद्वाक्षसं विद्यात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥

शातातपः—अध्यासनोपविष्टश्च यो भुङ्क्ते प्रथमं द्विजः ।

बहूनां पश्यतां सोऽहः पङ्कत्या हरति कित्तिपम् ॥

गोभिलः—एकपङ्क्त्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने ।

यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं नाश्रीयुरितरेऽप्यनु ॥

मोहात्तु भुङ्क्ते यस्तत्र तप्तसांतपनं चरेत् ।

भुञ्जानेषु तु विप्रेषु यस्तु पात्रं परित्यजेत् ।

भोजने विन्नकर्ताऽसौ ब्रह्महाऽपि तथोच्यते ॥ इति ।

इदं च गुरुभिन्ने आचान्ते उत्थिते वा बोध्यम् । तदाहोशनाः—

अगुरुभिराचमनोत्थानं चेति पङ्क्तिस्थानां भोजननिषेधकप्रयोजकमिति

शेषः । अयं च निषेधो युगान्तरपरः । ‘उच्छिष्टस्याऽपि वर्जनम्’ इति

फलनिषिद्धेषु पाठादिति केचित् । तत्र, एकस्मिन्नुत्थितेऽपीतरपात्र-

स्थान्नस्योच्छिष्टत्वाभावेन तद्वर्जनाप्रसक्तेः । वस्तुतस्तु उच्छिष्टस्यापवर्जन-

मिति पाठः । तदर्थस्तु अपवर्जनं दानम् । तत्तु “ब्राह्मणायोदङ्हुच्छिष्टं

प्रयच्छेत्” इति मधुपर्गे प्रसक्त कलौ निषिध्यते । निरुणायि चेदं भ्रातृचरणै कलिप्रवर्धने ।

वृद्धस्पति — न स्पृशेद्वामहस्तेन भुञ्जानोऽन्न कदाचन ।

न पादौ न शिरो वर्स्ति न पदा भाजनं स्पृशेत् ॥ इति ।

आदित्यपुराणे—

नोच्छिष्टो ग्राहयेदाज्यं जग्ध्वा शिष्टं न सत्यजेत् ।

शूद्रमुक्तांशुशिष्टं तु नाद्यान्नाण्डस्थितं त्वपि ॥

प्रद्युम्नपुराणे—

यस्तु पाणिमले मुक्ते यच्च फूत्कारसंयुतम् ।

प्रसृताङ्गुलिभिर्धृष्टं तस्य गोमासवच्च तत् ॥

नाजीर्णे भोजनं कुर्यात्कुर्यान्नातिबुभुक्षितं ।

नार्द्रवासा नार्द्रशिरा वेवालयगतोऽथवा ॥

न प्रसारितपादस्तु पादरोपितपाणिमान् ।

न वेष्टितशिराश्चापि नोत्सङ्गकृतभाजनं ॥

मासशेषं न चाभीयात्पीतशेषं पित्रेन च ।

शाकमूलफलभूषणा दन्तच्छेदैर्न भक्षयेत् ॥

घट्टना मुञ्जता मध्ये नाभीयाच्च त्वरान्वितं ।

घृथा न विनिरेदन्नं नोच्छिष्टं च कचिदन्नमेव ॥

शूद्रमनु — न पित्रेन च भुञ्जीत द्विजः ॥ येन पाणिना ।

नैकहस्तेन च जलं शूद्रेणावर्जितं पित्रेन ॥

पिबतो यत्पतत्तोयं भाजने मुरनि स्तुतम् ।

अभोग्यं तद्भवेदन्नं भोक्तॄन् भुञ्जीत स्तित्यपि ॥

पीतावशेषितं तोयं ग्राह्यं न पुनः पित्रेन ।

पिबेद्यदि हि तत्तोयं द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ इति ।

कोमे— नार्धरात्रे न मध्याह्ने नाजीर्णे नार्द्रवस्त्रधृत् ।

न भिन्नभाजने चैव न भूष्या न च पाणिषु ॥

नोच्छिष्टो घृतमादद्यान्न मूर्ध्नि स्पृशन्नपि ।

न घ्राणं कीर्तयन्वापि न निःशेषं न भायेया ।

नाङ्गारे न च नाकाशे न च देवालयदिषु ॥ इति ।

भार्ययेति सद्योगे तृतीया ।

शातातप — उद्धृत्य वामहस्तेन यत्तोयं पिबति द्विजः ।

सुरापानेन तत्तुल्यं मनुराह प्रजापतिः ॥

अत्रिः— तोयं पाणिनखस्पृष्टं ब्राह्मणो न पिवेत्कचित् ।

सुरापानेन तत्तुल्यमित्येवं मनुरश्रवीत् ॥

याज्ञवल्क्यः—

संधिन्यनिर्देशावत्सागोपयः परिवर्जयेत् ।

औष्ट्रमेकशफं खैणमारण्यकमथाविक्रम् ॥ इति ।

औष्ट्रमिति विकारमात्रे तद्धितः तेनोष्ट्रसंबन्धि मांसाद्यपि 'निपिद्धम् ।

गौतमः— 'गोश्च क्षीरमनिर्देशायाः सूतकेऽज्जामहिष्योश्च नित्यमायिकमपेयमौष्ट्रमेकशफं च स्यन्दिनीयमसूसंधिनीनां विवत्सायाश्च' इति । अत्र विवत्साया गोरेव वर्ज्यं न महिष्यादेरपि गोत्वसमवायिबयोविशेषस्यैव वत्सपदशक्यत्वेन महिष्यादेरपत्ये तदप्रसक्तेः । एतेन 'विवत्सागवादिः' इति हरदत्तीयमादिपरं परास्तम् । स्यन्दिनी प्रसूवत्तनी । यमसूर्यमलजननी । संधिनी सगर्भा, सायं प्रातर्वातिक्रम्य या दुग्धे सा वा योजितान्यवत्सा वा । अन्त्यव्याख्याने विवत्सापदं पुनरुक्तमिति केचित् तन्न, तदर्थयोः परस्परव्यभिचारात् । विज्ञानेश्वरोऽप्येवमेवाभिप्रेति ।

श्लोकगौतमः—

कलहभ्रमणप्रावचक्रस्योद्धूलस्य च ।

एतेषां निनदो यावत्तावत्कालमभोजनम् ॥

कात्यायनः—

चण्डालपतितोदक्यावाक्यं श्रुत्वा द्विजोत्तमः ।

भुञ्जीत प्रासमात्रं तु दिनमेकमभोजनम् ॥

[वृंहस्पतिः]—

अप्येकपङ्क्त्यां नाभीयाद्वाहणैः स्वजनैरपि ।

को हि जानाति किं कस्य प्रच्छन्नं पातकं भवेत् ॥

एकपङ्क्त्युपविष्टानां दुष्कृतं यदुरात्मनाम् ।

सर्वेषां तत्समं तावथावत्पङ्क्तिर्न भिद्यते ॥

अग्निना भस्मना चैव स्तम्भेन सटिलेन च ।

द्वारेणैव च मार्गेण पङ्क्तिर्भेदो ब्रूधेः स्मृतः ॥ इति ।

पराशरः— यो वेष्टितशिरा मुङ्क्ते यो मुङ्क्ते दक्षिणामुखः ।

वामपादकरः स्थित्वा तद्वै रक्षांसि मुञ्चते ॥ इति ।

वामपादे करो यस्येत्यर्थः । स्थित्वाऽनुपविश्य ।

मनु—आयुष्य ग्राह्मुखो मुक्ते यशस्य दक्षिणामुख ।

श्रिय प्रत्यह्मुखो मुक्ते ऋतु मुक्ते उदह्मुख ॥ इति ।

दक्षिणामुखभोजननिषेधस्तु नित्यभोजनपरः ।

अथ भोजनोत्तराङ्गानि ।

देवद —मुच्छोऽच्छिष्ट समादाय सर्वस्मार्त्तिकचिदाचमन् ।

उच्छिष्टभागधेयेभ्यः सोदरं निर्वपद्भुवि ॥ इति ।

तत्र मन्त्र —

रौरवऽपुण्यनिलये पद्मार्बुदनिगासिनाम् ।

उच्छिष्टोदकमिन्दूनामक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ इति ।

व्यास —‘तत्तल्लूत सन्नमृतापिधानमसीत्यपः प्राश्य तस्माद्देशान्म-
नागपस्त्य विधिवदाचामेत्’ इति ।

श्लोकगौतम —

गण्डूपस्याथ समये तर्जन्या वनचालनम् ।

कुर्वीत यदि मूढात्मा रौरवे नरकं पतेत् ॥ इति ।

तथा— तस्मिन्नाचमनं कुर्याद्यत्र भाण्डंय मुक्तवान् ।

यद्युत्तिष्ठति नाचान्तो मुक्तवानासनात्ततः ।

ज्ञानं सद्यः प्रकुर्वीत सोऽन्यथाऽप्रयतो भवेत् ॥ इति ।

व्यास—इत्तं प्रक्षाल्य गण्डूपं यः पिबेदविचक्षणः ।

स देवाश्च पितृश्चैनं ह्यात्मानं चैव पातयेत् ॥ इति ।

कौर्मै— आचान्तं पुनराचामेदायगौरितिमन्त्रतः ।

द्वुपश्च वा त्रिरावृत्य सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥

प्राणानां मन्त्रिरसीत्यालभेद्दृढयः ततः ।

आचम्याङ्गुष्ठमानीय पादाङ्गुष्ठे तु दक्षिणे ॥

निःस्तावयेद्धस्तजलमूर्ध्वहस्तं समाहितः ।

हुतानुमन्त्रणं कुर्यात्त्र्यह्यायामितिमन्त्रतः ॥

अष्टाक्षरं स्वात्मानं योजयेत् ब्रह्मणेति हि ।

सर्वेषामेव यागानामात्मयागः परः स्मृतः ।

योऽनेन विधिना कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ इति ।

त्रिण्यपुराणे—विष्णुरस्ता तथैवाज्ञः परिणामश्च वै तथा ।

सत्येन तेन वै भुक्तं जीर्यत्वन्नमिदं तथा ॥

इत्युच्चार्य स्वहस्तेन परिमृज्यात्तधोदरम् ।

अनायासप्रदायीनि कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रितः ॥ इति ।

अग्निः— आचान्तोऽप्यशुचिस्तावद्यावत्पात्रमनुदृतम् ।

उद्धृतोऽप्यशुचिस्तावद्यावन्नोन्मृज्यते मही ॥

भूमावपि हि क्षिप्तायां तावत्स्यादशुचिः पुमान् ।

आसनादुत्थितस्तस्माद्यावन्न स्पृशते महीम् ॥ इति ।

मार्फण्डेयः—

भूयोऽप्याचम्य कर्तव्यं सत-ताम्यूलभक्षणम् । इति ।

वसिष्ठः—सुपूगं च सुपत्रं च चूर्णेन च समन्वितम् ।

अदत्त्वा द्विजदेवेभ्यस्ताम्यूलं वर्जयेद्बुधः ॥

एकपूगं सुखारोग्यं द्विपूगं निष्फलं भवेत् ।

अतिश्रेष्ठं त्रिपूगं च ह्यधिकं नैव दुष्यति ॥

पर्णमूले भवेद्याधिः पर्णाम्रे पापसंभवः ।

जीर्णपर्णं क्षिपेदामुः शिरा बुद्धिविनाशिनी ॥

तस्मादग्रं च मूलं च शिरां चैव विशेषतः ।

जीर्णपर्णं वर्जयित्वा ताम्यूलं खादयेद्बुधः ॥ इति रविः ।

अथ भोजनोत्तरं कृत्यम् ।

दक्षः— इतिहासपुराणाद्यैः पष्ठसप्तमकौ नयेत् ।

अष्टमे लोकयात्रा तु बहिःसंध्या ततः पुनः ॥

यमः— रवेरस्तमयात्पूर्वं षटिकैका यदा भवेत् ।

सार्यसंध्यामुपास्याथ कुर्याद्धोमं च पूर्ववत् ॥

दीपकालः संपदे—

रवेरस्तं समारभ्य यावत्सूर्योदयो भवेत् ।

यस्य तिष्ठेद्गृहे दीपस्तस्य नास्ति दरिद्रता ॥

आयुर्दः प्राङ्मुखो दीपो धनदः स्यादुदङ्मुखः ।

प्रत्यङ्मुखो दुःखदोऽसौ द्वाग्निदो दक्षिणामुखः ॥

संध्यावन्दनं पूर्वमुक्तं तत्र विशेषमाह ।

व्यासः— जपेद्धारुणमन्त्रांस्तु इममेवरुणादिकान् ।

१ चूर्णपर्णं क. पाठः ।

चतुर्भन्त्रान्विशेषतः संध्याफलमवाप्नुयात् ॥

संध्यावन्दनाकरणे जमदग्निः—

एकाहं चाप्यतित्रम्य संध्यावन्दनमर्म च ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा गायत्र्याश्वायुतं जपेत् ॥
द्विरात्रे द्विगुणं प्रोक्तं त्रिरात्रे त्रिगुणं भवेत् ।
त्रिरात्रात्परतश्चेत्स्याच्छृष्ट एव न संशयः ॥

फालातिक्रमे पारिजाते गौतमः—

संध्याकाले त्वतिशान्ते स्नात्वाऽऽचम्य यथाविधि ।
जपेदष्टशतं देवीं ततः संध्या ममाचरेत् ॥ इति ।

वसिष्ठस्तु—

फालातिक्रमणे चैव त्रिसध्यमपि सर्वदा ।
चतुर्यार्ष्यं प्रकुर्वीत भानो र्याहृतिस्पृष्टम् ॥
यमस्तु— प्राणायामत्रयं प्रातः संगवे त्रिगुणं परेत् ।
मध्याह्ने त्रिगुणं प्रोक्तमपराह्णे चतुर्गुणम् ।
सायाह्णे पञ्चगुणकं संध्यातिक्रमणे भवेत् ॥
यदा “दीप्येति” मन्त्रं वै सप्तवारं जपेद्यदि ।
अकाले कुर्वतः कर्म काले काले कृतानि तु ॥

भवन्तीति शेषः । आद्यभोजने तु गर्गः—

दशहृत्वा पित्रेदापो गायत्र्या आद्यभुक् द्विजः ।
ततः संध्यामुपासीत शुद्धवेत्तु तदनन्तरम् ॥

इदं तु संध्याधिकारार्थं न तु आद्यभोजनप्रायश्चित्तमिति नृसिंहः ।

प्रायश्चित्तमेवेत्यन्ये, तच्च गुरुप्रायश्चित्तान्तराशङ्काविति ।

अथ सायं होमकालः ।

कात्यायनः—

सूर्योऽस्तशैलं संप्राप्ते पङ्क्तिं पङ्क्तिरिहाङ्गुलैः ।
प्रादुष्करणमग्नीनां प्रातर्भासा च दर्शनान् ॥

तथा— यावत्सम्यक् न भाव्यन्ते नमस्युद्देशाणि सर्वतः ।
न च लोहितमायाति तावत्सायं च हूयते ॥ इति ।

अथ स्वापः ।

गार्ग्यः— शुचिदेशं विविक्तं तु गोमयेनोपलेपयेन् ।
 वैदिकैर्गार्गुडैर्मन्त्रैरभिमन्त्र्य स्वपेत्ततः ॥
 मद्गत्य पूर्णकुम्भं च शिरःस्थाने निधापयेन् ।
 आधौतशुष्कपादस्तु स्वाचान्तः शयने शुचौ ॥
 अभीष्टदेवतां स्मृत्वा संविशेन्मद्गलध्वनौ ।
 रात्रिसूक्तं जपेद्वाग्नौ रात्रिशामो भवेन्नरः ॥

[क्षामः शान्तः ।]

तथा— पूर्वरात्रे व्यतीते तु स गच्छेद्रतिमन्दिरम् ।
 पादौ प्रक्षालयेत्पूर्वं पश्चाच्छय्यां समाविशेन् ॥
 धौतवस्त्रं च ताम्बूलं संयोगे च शुभावहम् ॥

अथ स्त्रीकृत्यम् ।

भर्तुः पादौ नमस्कृत्य पश्चाच्छय्यां समाविशेन् ।

अथ रतिः ।

संस्मृत्य परमात्मानं फंजीजङ्गे प्रसारयेत् ।
 योनिं स्पृष्ट्वा जपेत्सूक्तं “विष्णुर्योनिं” प्रजापतेः ।
 रेतः सिञ्चेत्ततो योन्यां तस्माद्गर्भं विभर्ति सा ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः—पोडशर्तुर्निशाः स्त्रीणां तस्मिन्नुग्मासु संविशेत् ।

ग्रहचार्येण पर्वाण्याद्याश्चतसस्तु वर्जयेत् ।

यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणां वरमनुस्मरन् ॥ इति ।

कामे— ऋतुकालाभिगामित्वं स्वदारेषु रतान्मनः ।

पर्ववर्ज्यं गृहस्थस्य ग्रहचर्यमुदाहृतम् ॥ इति ।

एवंप्रकारेण गच्छतः आद्यादौ न ग्रहचर्यक्षतिदोष इति मिताक्षरा-
 याम् । पञ्चदशदिनपर्यन्तं गमनाभावेऽन्त्यदिने च आद्यप्रसक्तौ तद्दिने
 गच्छतो दोषाभावपरमिति हेमाद्रिः । प्रमाणं त्वत्र चिन्त्यम् ।

ऋतुः— तास्ताभाद्याश्चतसस्तु निन्दितैकादशी तथा ।

त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ इति ।

तथा— षष्ट्या च चतुर्दश्यां दिवा पर्वणि मैथुनम् ।

कृत्वा सचैलं स्नात्वा तु वारणीभिश्च मार्जयेत् ॥

मनु — अमावास्याष्टमी चैव पौर्णमासी चतुर्दशी ।
ब्रह्मचारी भोजनियमप्यृतौ स्नातको द्विज ॥ इति ।

तथा — स्त्रीणां तु प्रेक्षणात्स्पर्शाद्धास्यगृह्णारभाषणात् ।
स्पन्दते ब्रह्मचर्यं च न दारेष्वृतुसगमान् ॥ इति ।

तथा — ऋतौ तु गर्भं शङ्कित्वा स्नानं मैथुनिनं स्मृतम् ।
अमृतौ तु यदा गच्छेच्छौचं मूत्रपुरीषवत् ॥ इति ।

विष्णु — कृतपादादिशौचस्तु भुक्त्वा सायं ततो गृही ।
गच्छेच्छय्यामस्फुटितामपि दारमयीं नृप ॥ इति ।

गच्छेच्छय्या शयनार्थमित्यर्थः । शयने विधिमाह हारीत — 'सुप्रक्षालितचरणं सर्जतो रक्षा कृत्वोदकपूर्णघटादिमङ्गलोपेतं आत्माभिरुचितामनुपहताम्' सूत्रामाणमिति पठन् शय्यामधिष्ठाय रात्रिमुक्तं जप्त्वा विष्णुं नमस्कृत्य 'सर्पापसर्पं भद्रं ते' इत्येतत् श्लोकद्वयं जप्त्वेष्टदेवतास्मरणं कृत्वा समाविमाथ्यायान्याश्च वैदिकान्मन्त्रान्सावित्रीं जप्त्वा मङ्गलं शुचिं शङ्खं च शृण्वन् दक्षिणाशिरा स्वपेत्' इति ।

विष्णुपुराणे —

रात्रिसूतं जपेत्स्मृत्वा देवाश्च सुखशायिनः ।

नमस्कृत्वाऽन्यथं विष्णुं समाधिस्थं स्वपन्निशि ॥ इति ।

सुखशायिनो देवा गोभिलेन प्रदर्शिता —

अगस्तिर्मानवश्चैव मुचुमुन्दो महामुनिः ।

पथिलो मुनिरास्तीनः पथ्वीते सुरशायिनः ॥ इति ।

दक्षिणशिरा इति श्रद्धार्थं । तथा विष्णुपुराणे —

प्राच्यां दिशि शिरः शस्तं याम्यायामथवा नृप ।

सदैव स्वपत् पुंसो विपरीतं तु रोगदम् ॥ इति ।

हारीतोऽपि — 'न तिर्यगुदरप्रत्यङ्गशिरा षोणशिरा पश्चिमशिरा उत्तरशिराश्च' इति । दिग्भिन्नोपेयं फलविशेषं उक्तं मार्कण्डेये —

प्राङ्शिरःशयने विष्णोर्द्वन्द्वमायुश्च दक्षिणे ।

पश्चिमे प्रथया चिन्ता दानिमृग्युग्योत्तरे ॥

स्थलविशेषे दिग्भिन्नोपमाह गार्ग्यः —

स्थले जाग्रन्तिरा जेत क्षात्रं दक्षिणाशिराः ।

प्रत्यक्शिराः प्रवासे तु न कदाचिदुदक्शिराः ॥ इति ।
तथा— यानिकानि च पुष्पाणि यत्किञ्चिदनुलेपनम् ।

अलक्ष्मीपरिहारार्थं नित्यं कुरु युविष्ठिर ॥

शयने वर्ज्यस्थानान्याह मार्कण्डेयः—

शून्यालये स्मशाने च एकवृक्षे चतुष्पथे ।
महादेवालये वापि मातृवेश्मनि न स्वपेन् ॥

न यक्षनागायतने स्कन्दस्यायतने तथा ।

शुलच्छायासु च तथा शर्करालोष्ट्रपांसुषु ॥

न स्वपेद्य तथा दर्मे विना दीक्षां कथंचन ।

धान्यगोधनविप्राणां गुरूणां च तथोपरि ॥

नाकाशे सर्वतः शून्ये न च चैत्यद्रुमे तथा ॥ इति ।

निषिद्धशय्योक्ता विष्णुपुराणे—

न विशालां न वा भग्नां नासमां मलितां तथा ।

न च दन्तमयीं शय्यामधिविष्टेदनास्मृताम् ॥

न तु जन्तुमयीमित्यपि कचित्पाठः । दन्तमयीं मृतहस्तीदन्तमयी-
मित्यर्थः ।

तथाच तत्रैव—

मृतदन्तमये विशुद्धे दर्मे पलाशजे ।

न शयीत नरो धान्ये शयने पथ्वादरुजे ॥

पथ्वादरुणि चोक्तानि चूतजम्बूद्रुमास्तथा ।

अश्वमपीठोत्थिताश्चैव घटसिक्ततरुस्तथा ॥

करिभ्रमकृते चैव न शयीत कचिन्नरः ॥ इति ।

स्वापकालमाह दक्षः—

प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासे न योजयेत् ।

यामद्वयं शयानस्तुं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ इति ।

तथा— निद्रासमयमासाद्य ताम्बूलं वदनात्त्यजेत् ।

पर्यङ्कात्प्रमदां भालात्पुण्ड्रं पुष्पाणि मस्तकात् ॥

॥ इति शयनविधिः ॥

यदेतदुत्तमाह्निकमेतदकरणे प्रत्यवाय उक्तः कौमे—

इत्येतदखिलं प्रोक्तमहन्यहनि वै द्विजाः ।

आक्षेपणानां कृत्यज्ञानमपवर्गफलप्रदम् ॥
नास्ति स्यादथवाऽऽलस्याद्वाक्षेपो न करोति यः ।
स याति नरकान्धोरान्काकयोनी च जायते ॥
नान्यो विमुक्तये पन्था मुक्त्वाऽऽश्रमविधिं स्मरम् ।
तस्मात्कर्माणि कुर्वीत तुष्टये परमेष्ठिनः ॥ इति ।

स्वप्नफलानि ।

अथ रात्रौ स्वप्नफलनिर्णयः । तत्रादौ स्वप्नदर्शनानस्थामाह वैद्यः —

सर्वेन्द्रियव्युत्पत्तौ मनोऽनुपगतं यदा ।
विषयेभ्यस्तदा स्वप्नं नानारूपं प्रपश्यति ॥

स च स्वप्नो द्विविधः, इष्टफलोऽनिष्टफलोऽप्येति । तत्र सामान्यत इष्टफलो यथा—

नग्रीसमुद्रतरणमाशगमनं तथा ।
भास्वरौदनं चैव प्रज्वलन्तं हृताशनम् ॥
महानक्षत्रताराणां चन्द्रमण्डलदर्शनम् ।
हर्षस्यारोहणं चैव प्रासादगिरसोऽपि वा ।
एवमादीनि संदृश्य नरः सिद्धिमवाप्नुयात् ॥
स्वप्ने तु मदिगपानं वसामासस्य भक्षणम् ।
त्रिमिविष्टानुलेपं च रुधिरणाभिषेचनम् ॥
भोजनं दधिभक्षस्य श्वेतवस्त्रानुलेपनम् ।
रत्नान्याभरणादीनि स्वप्ने दृष्ट्वा प्रसिष्यति ॥
देवविप्रव्यजन्तप्रतुष्टपङ्कजपार्थिवान् ।
शुद्धपुष्पाम्बरभरान्प्रशस्ताभरणाङ्गना ॥
शृङ्गेभर्षतभीष्मिलितृश्राभिरोहणम् ।
दर्पणाभिर्गमात्वातिस्तरणं च महाम्भसाम् ॥
दृष्ट्वा स्वप्नेऽर्थलाभं स्याद्व्याप्तिमुत्तमं जायते ॥ इति ।

सामान्यतोऽनिष्टफलो यथा—

यूः किंनु कृत्स्नीदृष्ट्वाभिभ्रशभिरोहणम् ।
तेलकार्पासविष्यादलोद्वायानिर्गमने ॥
विराद्वरणं स्वप्ने रणप्रवृत्त्यभरणम् ।
श्लोतसप्तदशं तेजं पञ्चनामाय भोजनम् ॥ इति ।

तदेवं द्विगुणस्यापि स्वप्नस्य दर्शनकालभेदेन फलभेदः स्वप्नाध्याये—

स्वप्नास्तु प्रथमे यामे संवत्सरविपाकिनः ।

द्वितीये चाष्टभिर्मासैस्त्रिभिर्मासैस्त्रियामके ॥

चतुर्थयामे यः स्वप्नो मासेन फलदः स्मृतः ।

अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलं भवेत् ।

गोविसर्जनवेलायां सद्य एव फलं भवेत् ॥ इति ।

अथ विशेषत इष्टफलाः स्वप्नाः—

यस्तु पश्यति वै स्वप्ने राजानं कुञ्जरं हयम् ।

सुवर्णं घृपभं गां वा कुटुम्बं तस्य वर्धते ॥

आरोहणं गोघृपकुञ्जराणां प्रासादशैलाग्रवनस्पतीनाम् ।

विष्टानुलेपो रुदितं मृतं वा स्वप्नेष्वगम्यागमनं च धन्यम् ।

क्षीरिणं फलिनं घृक्षमेकाकी योऽधिरोहति ।

तत्रस्थः ॥ विवृष्येत धनं शीघ्रमवाप्नुयात् ॥

यस्य श्वेतेन सर्पेण प्रस्यते दक्षिणः करः ।

सहस्रलभस्तस्य स्यादपूर्णे दशमे दिने ॥

उरगो घृक्षिको वाऽपि जले प्रसति यं तरम् ।

विजयं चार्थसिद्धिं च पुत्रं तस्य विनिर्दिशेत् ॥

प्रासादं शैलमारुह्य समुद्रं तरते नरः ।

अपि दासकुले जातो राजा भवति वै ध्रुवम् ॥

यस्तु मध्ये तडागत्य भुङ्क्ते च घृतपायसम् ।

अखण्डमुष्करे पत्रे तं विद्यात्पृथिवीपतिम् ॥

बलाकां कुक्कुटीं कौश्वीं दृष्ट्वा यः प्रतिबुध्यति ।

कुलजां लभते कन्यां भार्या ॥ प्रियवादिनीम् ॥

निगडैर्वध्यते यस्तु बाहुपाशेन वा पुनः ।

पुत्रो वा जायते तस्य धनं शीघ्रमवाप्नुयात् ॥

आसने शयने याने शरीरे वाहने गृहे ।

ज्वलमाने विवृष्येत तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥

आदित्यमण्डलं स्वप्ने चन्द्रं वा यदि पश्यति ।

व्याधितो मुच्यते रोगादरोगी श्रियमाप्नुयात् ॥

रुधिरं पिवति स्वप्ने सुरां वापि तथा नरः ।

प्राघ्नो लभते विद्यामित्रो लभते धनम् ॥

शुक्लाम्बरधरा नारी शुक्लगन्धानुलेपना ।
 अवगृह्णति यं स्वप्ने श्रिय तस्य विनिर्दिमेत् ॥
 पादुकोपानहौ छत्र लब्ध्वा य प्रतिपुध्यते ।
 असि वा निर्मल तीक्ष्ण साध्वन्नं तस्य निर्दिशेत् ॥
 रथाङ्गं वृषसयुक्तमेकाकी य प्ररोहति ।
 तत्रस्थ ॥ त्रिपुध्येत धनं शीघ्रमवाप्नुयात् ॥
 दधिलाम्भे भवेद्यो घृतलाम्भे घृव यशः ।
 घृताशने घृवः श्रेष्ठो यशस्तु दधिभक्षणे ॥
 आन्त्रैस्तु वेष्टितो यो वै नगरऽपि गृहेऽपि वा ।
 गृहे माण्डलिको राजा नगर पार्थिवो भवन् ॥
 मानुषाणि च मासानि स्वप्नान्ते यस्तु पश्यति ।
 हरितानि तु पफानि शृणु तस्य च यत्फलम् ॥
 पद्मक्षणे क्षत लाभ सहस्र पादुभक्षणे ।
 राज्य शतसहस्र वा भग्नैर्भीर्भक्षणे ॥

सर्वाणि शुष्ठान्यपि शोभनानि वार्पासतरोदनभस्मचर्मम् ।
 सर्वाणि कृष्णान्यतिनिन्दितानि गोहस्तिदेवद्विजराजिवर्म्यम् ॥
 क्षीर पित्रति च. स्वप्ने सपेन दोहने कृत ।
 सोमपान भवेत्तस्य भुक्त्वा भोगानशेषम् ॥
 दधि दृष्ट्वा भग्नप्रीतिर्गोधूमश्च धनागमः ।
 यवाद्यज्ञागम विन्त्याहाम सिद्धार्थकादपि ॥
 नागपत्र लभेन् स्वप्ने कर्पूरमगद तथा ।
 चन्दन पाण्डुर पुष्प तस्य श्री सर्वतोमुग्री ॥ इति ।

॥ इति विशेषत इष्टपत्न्या स्वप्ना ॥

अथ विशपतोऽनिष्टपत्न्या स्वप्ना । तत्र शौनक —

अथ स्वप्नानि वक्ष्यन्त दुर्निमित्ताण्युक्तानि तु ।
 आदित्यं वायु चन्द्र वा विगतच्छदिव तथा ॥
 पलन्तं वायु नभश्च तारकादीश्च ॥ यदि ।
 वीथेन मानव स्वप्ने मरणं शोचमानुषान् ॥

स्वप्नाध्याये—

अशोक करवीरं वा पत्रादां वायु पुष्पितम् ।
 स्वप्नान्ते यस्तु पश्येत् नरः शोचमानुषान् ॥

नावमारोहयेद्यस्तु नदीनां च समुत्तरे ।
 प्रवासं निर्दिशेत्तस्य शीघ्रं च पुनरागमम् ॥
 रक्तान्ध्रधरा नारी रक्तगन्धानुलेपना ।
 अवगृह्णाति यं स्वप्ने मृत्युं तस्य विनिर्दिशेत् ॥
 तैलेनाभ्यक्तकायस्तु पयसा तु घृतेन वा ।
 स्नेहेन वा तथान्येन व्याधिं तस्य विनिर्दिशेत् ॥
 केशा यस्य विशीर्यन्ते यदि दन्ताः पतन्ति वा ।
 अर्थनाशो भवेत्तस्य पुत्रो वा यदि नश्यति ॥
 खरोष्ट्रमाहिपरथमेकाकी यः प्ररोहति ।
 तत्रस्थः स तु बुध्येत मृत्युं शीघ्रमवाप्नुयान् ॥
 कर्णनासाफरादीनां छेदनं पङ्कमजनम् ।
 पतनं दन्तकेशानां पक्षमांसस्य भक्षणम् ॥
 खरोष्ट्रमादिपि यानं तैलाभ्यङ्गं च मृत्यवे ॥

इति विशेषतोऽनिष्टपक्षाः स्वप्नाः ।

॥ इति स्वप्नफलनिर्णयः ॥

स्वस्थारिष्टानि ।

अथ स्वस्थारिष्टानि—

अरुन्धती ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ।
 आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमण्डलम् ॥
 दंहेऽप्यरुन्धती जिह्वा ध्रुवो नासाग्रमुच्यते ।
 ध्रुवोर्मध्यगतं मध्यं तारका मातृमण्डलम् ॥
 आकीर्णश्रवणे यस्य न घोषं शृणुयात्तथा ।
 नभोमन्दाकिनीमिन्दोऽश्रयां नेक्षेद्द्रतायुषः ॥
 पांसुपङ्कादिषु न्यस्तं खण्डं यस्य पदं भवेत् ।
 पुरतः पृष्ठतोऽवापि सोऽष्टौ मासान्न जीवति ॥
 स्नानान्बुलिसगात्रस्य यस्यास्यं प्राक् प्रशुष्यति ।
 गात्रेष्वार्द्रेषु सर्वेषु सोऽर्धमासं न जीवति ॥

दुःस्वप्नशान्तिः ।

अथ दुःस्वप्नशान्तिमाह शौनकः—

एवमादीनि चान्यानि श्रुत्युक्तानि बहूनि च ।

स्वप्नोत्पातानि चैतेषां फालरात्र्यभिदेयता ॥

पूजाविधानं पूर्वोक्तं कुर्यादत्रापि यत्नतः ।

पूर्वोक्तमिति रात्रिसूक्तकल्पवदित्यर्थः । रात्रिसूक्तकल्पश्च ग्रन्थगौ-
रवभयाग्न लिखितः ।

होमं कुर्यात्प्रयत्नेन रात्रावेव द्विजोत्तमः ।

उत्तेनैव विधानेन सधृतं पायसं हुनेत् ॥

उत्तेन विधानेनेति स्वगृहोक्तविधानेनेत्यर्थः ।

प्रत्यूषं पायसं हुत्वा रात्रिज्यप्यदिति क्रमान् ।

अष्टोत्तरशतं हुत्वा सूतेनानेन वित्तमः ॥

• म्वप्राधिपतिमन्त्रेण फालरात्रनाममन्त्रेणेत्यर्थः ।

ततः श्विष्टकृतं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ।

पूर्वोक्तमभिप्रेतं यत्तदत्रापि विधीयते ॥

पूर्वोक्तं मह्यशोक्तमित्यर्थः ।

गुरवे दक्षिणां दद्याद्ब्रह्मे पञ्चनपि ॥

यद्यस्मि दक्षिणाभावोऽप्यग्रतो होमकर्मणि ।

हिरण्यं दक्षिणा दद्यात्तदानीमेव वा सुधः ॥

वस्त्रपुष्पादि सरलं तद्धोत्रे प्रतिपादयेत् ।

प्राञ्जगान्भोजयेच्छतया मुशीलान्वेष्टारगान् ॥

भर्क्ष्यश्च पायसाद्यैश्च रत्नानि सुगूनि च ।

अनेन विधिना यस्तु शान्तिं कुर्यात् शक्तितः ।

तस्य कर्षणायुष्यं भवत्येव न संशयः ॥ इति ।

वर्षेणानीमणिप्राप्तुममंगमभ्य

साभिष्यभाजि कृतिशालिनि मध्यदेशे ।

ग्याता भग्दे नगरी मुवि तत्र राजा

रात्रीन्त्रोचनरतो भगवन्तदेवः ॥

इति धीमेगरथं ताप तंगमहा राजाधिराजर्धमगवन्तदेवो घोत्रिनेन

मीमांसापारावारपाटीणपुरीणमदृशं रमट्टममममट्ट-

नीलकण्ठकृते भगवन्तमादरे व्याचारमयूगो

द्वितीयः समाप्तः ।

‘गुजराती’ मुद्रणालयस्थानि क्रय्यसंस्कृतपुस्तकानि ।

१ धीमद्भगवद्गीता *Bhagavat-Geeta* मूल्य मार्गव्यय
with 7 commentaries—प्रथमो
मुच्छः आनन्दगिरिकृतटीकासंवलितशांकरभाष्य-
जयतीर्थविरचितटीकासवलितानन्दतीर्थीय (भाष्य)
भाष्य—रामानुजभाष्य— पुरुषोत्तमजीप्रकाशितामृततर-
ङ्गिणी—नीलकण्ठीरामेता । मञ्जुलैरायसाहसुमुद्रिता ।
पृष्ठान्यष्टशतपरिमितानि मुचिद्गणानि । मूल्यम् रु. १-०-० ०-५-०

२ धीमद्भगवद्गीता *Bhagavat-Geeta*
with 8 other commentaries—
द्वितीयो मुच्छः । निम्बार्कमतानुयायित्रीकेलवका
स्मीरिमश्याचार्यपादप्रणीता—‘सरयप्रकाशिका’ धीम-
धुमूनगरस्वतीरता—‘गूढार्थदीपिका’ धीशङ्करानन्द
प्रणीता—‘तारपर्ययोधिनी’ धीधरस्वामिरता—
‘सुयोधिनी’ धीगदानन्दविरचित —‘भाष्यप्रकाश’
धीधनपतिसूरिविरचिता—‘भाष्योत्तरपदीपिका’ देव
हपण्डितश्रीमूर्त्यविरचिता ‘परमार्थप्रपा’ पूर्णप्रहमतानु
गारिभीरापवेन्द्रकृत —‘अर्थसंग्रहः’ इत्येताभिर्व्या-
ख्याभिः सहिता अत्र श्लोका स्पृष्टमाधुरेयीकाय
स्पृष्टासुरेमुद्रिता, वृद्धा मा ह्येतिष्येति । मू. रु. १-०-० ०-१५-०

उत्तरगीता *Uttara-Geeta* with a
commentary—गौडपादीयदीपिकाख्यया-
ख्यायुता । भगवत्पादधीशङ्कराचार्याणां परमशुद्धिभि
धीगूढाचार्याणां च सिद्धे धीगौडपादाचार्ये प्रणीतये
भाष्ययत्नेतायकधनमतमस्या मद्विमानमवगमयितुम् ।
मूल्यम् रु. ०-१-० ०-०-१

धीमद्वाल्मीकिरामायणम् । वालकाण्डम् *Va-
lmiki Ramayana* with 3 well-
known commentaries, Bal
Kanda गर्गव्याख्यानप्रतिभेन इन्द्रकुंजरता
रिमाना निरूपयन्त्या धीमद्वाल्मीकीन स्वर्णिमस्य सतो

जीविकाप्रदातुः शृङ्गवेरपुराधीशस्य वीरमणेः श्रीरामरा- मूल्यं मार्गव्ययः
जस्य नाम्ना प्रणीतया रामायणतिलकाख्यया टीकया,
पण्डितधीवंशीधर-शिवसहाय्याभ्यां प्रणीतया रामायण-
शिरोमण्याख्यया टीकया, श्रीगोविन्दराजप्रणीतया
भूषणाख्यया टीकया च सह मुद्रयितुमारब्धमस्माभिः
श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम् । तच्च छत्रभिः खण्डैः समाप-
यिष्यामः । तत्रेदं प्रथमं खण्डम् । मूल्यम् रु. ... ३-०-० ०-५-०

अयोध्याकाण्डम् । *Ayodhya Kanda*,
द्वितीयखण्डम्—उर्ध्वनिर्दिष्टटीकाप्रयोपेतम् । मू.रु. ५-०-० ०-७-०
अरण्यकाण्डम् । *Aranya Kanda* तृती-
यखण्डम् । उपरिनिर्दिष्टटीकाप्रयोपेतम् । मूल्यम् रु. २-१२-० ०-६-०

५ **स्तोत्रमुक्ताहारः—Stotra-muktahar**
containing 256 Stotras अस्मिन्
२५६ स्तोत्राणि संगृहीतानि । यद्यपि सन्ति भूरीणि
स्तोत्रपुस्तकानि मुद्रितानि भूरिभिस्तथापि न तेष्वियतां
स्तोत्ररत्नानां संग्रहः । अस्माभिः पूर्वमुद्रितानां
स्तोत्राणां पुस्तकानि काश्यादिक्षेत्रेभ्यो भूयसा प्रयासेन
द्रविणव्ययेन च समासाय तेभ्यश्च प्रसादगुणयुक्तानि
स्तोत्राणि संकलप्य संशोच्य च तानि भाविकजनानां
कृतेषु समावेशितानि तदाशास्महे श्रद्धावन्तो जनाः
सफलयिष्यन्ति प्रयत्नमस्माकममुमिति । मूल्यम् रु. ०-८-० ०-२-०

६ **संस्कारमयूखः—Samskar Mayu-**
kha मीमांसकनीलकण्ठभट्टमुतशंकरभट्टकृतः । अत्र
संस्काराणां स्वरूपं कालः इतिकर्तव्यता वर्णधर्मा आश्रम-
धर्माश्च विस्तरतो मूलवचनोपन्यासपुरःसरं निरूपिताः ।
मूलवचनानि चाप्रतिपत्तिविप्रतिपत्तिसंभावनास्थलेषु क्र-
मेण पर्यायशब्दप्रदर्शनेन मीमांसकाभिमतन्यायानुसर-
णेन च व्याख्यातानि । अन्ते कातीयमूत्रानुसारिप्रयो-
गाश्च दत्ताः । पूर्वं चाराणस्यादिषु मुद्रितोप्यय वर्णप-
दवाक्यप्रशविपर्ययादिदोषप्रचुरतयाऽऽविमक्तविषयतया
च मृश दुर्बोधो विपरीतबोधकरव्यासीत् । अस्माभिस्तु
ग्रन्थकृतैव पुनः शोधितस्य वर्धितस्य चास्य ग्रन्थस्य
पुस्तकमासाय विपद्यांश्च प्रविमज्य शोधने च महान्तमा-
यासमासाय मुद्रितः । मू. रु. ... ०-१२-० ०-१-०

• **मनुस्मृतिः—Manu Smṛiti** कुल्लुकभट्टवृत्त- मूल्य मार्गव्ययः
टीकया, ग्रन्थान्तरेषु मनुनाप्रोद्धितैरिदानींतनमनुस्मृ-
तिपुस्तकेष्वनुपलभ्यमानैः श्लोकैः, पद्यानां वर्णानुक्रमको-
शेन, विषयानुक्रमेण च सहिता । सूक्ष्मेक्षिकया सशो-
धिता च । मू. द. ... १-८-० ०-३-०

८ **विदुरनीतिः—Vidura-Niti with a**
commentary सस्कृतटीकोपेता नीतिशास्त्रा-
भ्यासिना विद्यार्थिनामतीवोपयोगिनी । मू. द. ... ०-४-८ ०-१-०

९ **वेदान्तरहस्यम्—Vedānta Rahasya**
वेदान्तवागीशभट्टाचार्यविरचितम् । अनाद्वैतमतसि-
द्धान्तो निरूपितः । उपपत्तिश्च प्रदर्शिता । भाषाऽति-
सरला प्रौढा च । मूल्यम् द. ... ०-१-० ०-०-६

१० **विशिष्टाद्वैतमतविजयवादः—Vishishtā-**
dvaita - Mata - Vijaya - Vada
नरहरिपण्डितकृत । अत्र विशिष्टाद्वैतमते परंपरामाशे-
षाभिराकृत्य विशिष्टाद्वैत एवोपनिषदा तात्पर्यं व्यवस्था-
पितम् । मूल्यम् द. ... ०-१-० ०-०-६

११ **रघुवंशमहाकाव्यम्—Raghuvamsha**
Mallinatha's commentary
धीकालिदासकृतम् । मल्लिनाथकृतसंजीविन्याख्यटीका-
सहितम् । मू. द. ... ०-१०-० ०-३-०

१२ **रघुवंशमहाकाव्यं—मल्लिनाथकृतटीकोपेतम् ।**
सर्वा. १-५ ... ०-४-० ०-१-०

१३ **कुमारसंभवं महाकाव्यम्—Kumar-**
Sambhav with 3 known
commentaries कविवरधौकालिदासविर-
चितमिदं सप्तमगर्गपर्यन्तं मल्लिनाथकृतसंजीविन्या चारि-
श्रवणनृत्तशिरोहितैरिष्या च संवलितं सत आत्मानामि-
शीतारामकृतसंजीविन्याश्रितं शुक्लिनैरावगाधैर्लु-
हितमनीव दर्शनीयमस्ति । मूल्यम् द. ... १-६-० ०-२-०

१४ **कारिकावली सिद्धान्तमुक्तावलीसहिता—**
Karikavalee with Siddhanta-
Muktavall and other notes
न्यायभेदोपनिर्द्देशनयोग्यं निष्कर्षां कृते प्रणीतेषु प्रकारम-

ग्रन्थेषु सिद्धान्तमुक्तावलीसमुद्रासिता कारिकावली मूल्यं मार्गव्ययः
 मूर्धाभिपिच्छेत्यत्र न विदुषां वैमत्यं किंतु तत्र दीधि-
 तिकृदुपसृतया विवेकसरण्या संश्लेषतः सूक्ष्मतमानाम-
 र्थानामुपनिबद्धतया प्रायः सिद्धान्ति नव्यादृष्टात्राः,
 इति तेषामुपकारायास्माभिः प्रायः सर्वेषु विषयस्थले-
 प्यतिविलृतां सरलां मुबोधां च टिप्पणीं पण्डित-जी-
 वरामशास्त्रिभिः कारयित्वा तया सहैवं दृढतरेषु सु-
 चिक्रणेषु पत्रेषु स्थूलाक्षरेर्मुद्रिता । सार्धशताभ्यधिकपत्र-
 युतामपीमां सर्वसौलभ्यायाल्पीयसा मूल्येन वितरामः ।

मू. द. ०-७-० ०-१-०

१५ वैशेषिकदर्शनम्—*Vaisheshika Darshana with several com-
 mentaries* श्रीशंकरमिश्रकृत-वैशेषिकसूत्रो-
 पस्कार—जयनारायणतर्कपञ्चाननभट्टाचार्यप्रणीत—
 चिब्रुति—चन्द्रकान्तमहारायप्रणीत—भाष्यसहितम् ।

मू. द. २-०-० ०-३-०

१६ वादार्थसंग्रहः—*Vadārtha Samgr-
 aha* (प्रथमो भागः) अत्र शेषकृष्णकृतं स्फोट-
 तत्त्वनिरूपण, श्रीकृष्णमौनिकृता स्फोटचन्द्रिका, गोड-
 बोलेकृतः प्रातिपदिकसंज्ञावादः, वाक्यवादः, हरियशो-
 मिश्रकृता वाक्यदीपिकेति पञ्च ग्रन्थाः संकलिताः ।
 पण्डितानां प्रौढच्छात्राणां च बहुतरमुपकारकः । मू. द. ०-६-० ०-०-६

१७ वादार्थसंग्रहः (द्वितीयोभागः)—अत्र भवानन्द-
 सिद्धान्तवागीशकृतं पट्टारकविवेचनम्, जयरामभट्टाचा-
 र्यकृतः कारकवादः समासवादश्च, एवकारवादश्चेति
 चत्वारो ग्रन्थाः सन्ति । मू. द. ०-६-० ०-०-६

१८ महाभागवतम्—*Maha Bhagavata*
 देवीपुराणम् । अस्मिन् भगवत्या ब्रह्मस्वरूपिण्या महा-
 काल्या दाक्षायणी—यज्ञा—पार्वती—श्रीकृष्णेत्यवतारच-
 त्रुष्ट्यचरितानि, महाकाल्या मूलस्थानं च प्रधानतयो-
 पवर्णितानि । प्रसङ्गादामचरितं स्कन्दचरितं पाण्डवचरितं
 गणेशोत्पत्तिर्गङ्गावतरणं भगवतीगीता ललितासहस्र-
 नाम शिवसहस्रनामादयश्च विषया निरूपिताः । सार्ध-
 पञ्चादहली सहितेयम् मू. द. २-०-० ०-३-०

- १९ **तैत्तिरीयोपनिषत् — Taittiriya-** मूल्य मार्गव्ययः
Upanishat श्रीमच्छंकरभगवत्पादकृतभाष्ये-
 णानन्दगिरिकृतटीकायुतेन तैत्तिरीयविद्याप्रकाशेन च
 सहिता । मू. रु. ... १-०-० ०-२-०
- २० **दशरूपकम्—Dasha Rupaka** नाट्य-
 शास्त्र धनञ्जयविरचितमन्त्रोक्तसहित पञ्चनदीयगण्डित-
 सुदर्शनाचार्यप्रणीतप्रमाख्यव्याख्यासहित च । मू. रु. १-०-० ०-२-०
- २१ **ब्रह्मसूत्रवृत्तिः—Brahma Sutra Vri-**
tti अद्वैतमञ्जरी । भगवत्पाद(आद्यशंकराचार्य)शिष्य-
 कृता । मू. रु. ... ०-१२-० ०-२-०
- २२ **चन्द्रालोकः—Chandraloka with**
a commentary श्रीपीयूषवर्ष जयदेवकवि-
 विरचितोद्भक्तप्रणयः । पायगुण्डोपाध्ववेशनाथ (शालमङ्ग)
 विरचितरमाख्यव्याख्यासहितः मू. रु. ... ०-८-० ०-१-०
- २३ **महाभारतविराट्पर्व—Mahabharata-**
Virata Parvan with eight
commentaries नीलकण्ठकृतभारतभाष्यदीप-
 भर्तृनमिभक्तदीपिका—चतुर्भुजमिभक्तप्रकाश—सर्व-
 ज्ञानारायणकृतभारतार्थप्रकाश—विमलबोधकृतदुर्धर्माथप्रका-
 शिनी—रामकृष्णकृतविरोधार्थमञ्जरी—विपमपदविवरण-
 षादिराजतीर्थविरचितलक्षाभरणेत्यष्टटीकोपेत विपुलमा-
 ठभेदसहित च । मू. रु. ... ३-८-० ०-६-०
- २४ **चन्द्रकान्त Chandrakanta(Hindi)**
 (वेदान्त ज्ञानका मुक्तग्रन्थ) प्रथम भाग यह वह
 ग्रन्थ है कि, जो नितान्त निर्ग्रन्त वेदान्त सिद्धान्तका
 एकात प्रतिपादक “चन्द्रकान्त” मणि बम्बई प्रान्तके
 प्रसिद्ध साप्ताहिक ‘गुजराती’ पत्रके मुख्य-आय
 संपादक गुजराती भाषाके सुविख्यात लेखक, अनेक
 ग्रन्थोंके निर्माता देशभक्तधुरीण, सारासारविवेकप्रवीण,
 वैद्यकुलभूषण श्रीमान् शेठ इच्छाशम सूर्यराम
 देसाईके शुद्ध हृदयमें देदीप्यमान प्रबोधरत्न-
 भाण्डागारका चमचमाता हुआ एक अमूल्य रत्न है.
 कि. रु. ... २-८-० ०-४-०

२६ युक्तिप्रकाश-Yukti Prakasha विचार- मूल्यं मार्गव्यव
 मागरका कर्ता साधु श्रीनिधलदासजीने किया हुआ .
 यह ग्रन्थ हिन्दुस्तानी भाषामें है. इसमें वेदान्तका ३९
 सिद्धान्त बहुत अच्छीतरहसे मिद्ध किये गये है.
 निधलदासजी वाणी सब जिज्ञासुलोकोको ज्ञात होनेसे
 विशेष निरूपणकी कुछ जरूरत है नहीं. और जिज्ञा-
 सुलोकोको ये ग्रन्थ बहुत उपयुक्त है. पड़ी जिल्द
 और अच्छा कागज. १-०-० ०-१-०

‘गुजराती’ मुद्रणालयाधिपतिः ।

फोट सर्वल सासुन बिल्डिंग-मुंबई.